# मुण्डकोपनिषत्

( तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्यासहित )

स्वामी त्रिभुवनदास

॥श्रीः॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
१९१

# मुण्डकोपनिषत्

(तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्यासहित)

(विमर्शात्मक संस्करण)

व्याख्याकार
स्वामी त्रिभुवनदास

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

THE
VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA
191

# MUNDAKOPANISHAT

with 'Tattvavivechani' Hindi Commentary

(Critical Edition)

*by*

Swami Tribhuvandass

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
DELHI

# आत्मनिवेदन

पूज्य गुरुदेव अनन्तश्रीविभूषित ब्रह्मविद्वरिष्ठ महान्त **श्रीस्वामी नृत्यगोपालदासजी महाराज** की पावन आज्ञा से प्रवर्तमान उपनिषद्व्याख्यानमाला का पञ्चम प्रसून मुण्डकोपनिषत् की प्रस्तुत तत्त्वविवेचनी व्याख्या है। 'विशिष्टाद्वैत वेदान्तका विस्तृत विवेचन' ग्रन्थ, ईश, केन, कठ, प्रश्न और तत्त्वत्रय की तत्त्वविवेचनी व्याख्या के प्रकाशन के पश्चात् प्रस्तुत व्याख्या निष्पन्न हुई। पूज्य गुरुदेव और अनन्तश्रीविभूषित भक्तिशास्त्रमर्मज्ञ श्रीमद्भागवतप्रवक्ता श्रीमलूकपीठाधीश्वर **श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज** ये दोनों महापुरुष मेरे स्वाध्याय और लेखनकार्य के प्रेरणास्रोत हैं। मैंने व्याकरण तथा वेदान्तके अप्रतिम विद्वान् **पण्डित श्रीरामवदनजी शुक्ल** और वीतराग-परमहंस, दार्शनिक सार्वभौम **स्वामी शंकरानन्द सरस्वतीजी** से विशिष्टाद्वैत वेदान्तका अध्ययन किया था। इन सभी महात्माओं के पावन पादपद्मों में अनन्त प्रणति समर्पित हैं।

**श्रीमहेशचन्द्र मासीवाल** (साहित्याचार्य- एम.एड., संस्कृत प्रवक्ता राजकीय इण्टर कालेज तडागताल, अल्मोडा उत्तराखण्ड) ने तत्परता से अक्षरसंयोजन, **श्रीरामशरणदास**(जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य सेवापीठ चतरा, वराहक्षेत्र, नेपाल)और **गोपालदासजी**(श्रीकृष्णकुञ्ज, मायाकुण्ड ऋषीकेश)ने अक्षरशुद्धिनिरीक्षण तथा **रुद्रनारायणदासजी** (स्वामी रामानन्दाश्रम, मायाकुण्ड ऋषीकेश)ने कुशलता से सम्पादनकार्य सम्पन्न किया है। इन सभीके परिश्रमके परिणामस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ उपनिषत्प्रेमी पाठकों के हाथों में प्रस्तुत है।

**स्वामी त्रिभुवनदास**

मङ्गलम्कुटीरम् गङ्गालाइन
पो.- स्वर्गाश्रम (ऋषीकेश),
उत्तराखण्ड, पिन-249304,

श्रीरामानन्दाचार्यजयन्ती
वि.सं.2072

# शुभ-आशीर्वाद

## श्रीराम

उपनिषद् भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। वे वेदों के सारसर्वस्व हैं। श्रीत्रिभुवनदासजी ने उपनिषदों पर विशद तत्त्वविवेचनी व्याख्या करके पाठकों का अत्यन्त हित किया है। वास्तव में आजकल पाठकों एवं लेखकों की आध्यात्मिक विषय में रुचि ही नहीं है। यह प्रेरणास्पद कार्य अपने में अनूठा है, इस महान् कार्यहेतु मैं आशीर्वाद देता हूं।

**महान्त नृत्यगोपालदास**
श्रीमणिरामदास छावनी
अयोध्या

# शुभ-सम्मति

## श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

असंख्येयकल्याणगुणगणनिलय, निखिलहेयप्रत्यनीक, शरणागतवत्सल, भक्तवत्सल, चिदचिन्नियामक श्रीसीतासर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी की कृपा से विद्वद्वरेण्य, तपःस्वाध्यायनिरत, परमादरणीय स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी की दिव्यतम कृति 'विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन' नामक ग्रन्थ साधक-सुधीजनों के करकमलों में सुशोभित हुआ। तत्पश्चात् तत्त्वत्रय की व्याख्या और ईश, केन, कठ तथा प्रश्नोपनिषद् की विशिष्टाद्वैतपरक व्याख्याएं हस्तगत हुईं, अब आपश्री के द्वारा लिखित मुण्डकोपनिषद् की व्याख्या प्रकाशित होने जा रही है, यह महान् हर्ष का विषय है।

मुण्डकोपनिषत् के प्रारम्भ में शौनक ऋषि का तत्त्वजिज्ञासा को लेकर अंगिरस् के पास जाना वर्णित है। तृतीय मन्त्र में शौनक को 'महाशालः' अर्थात् विशाल गुरुकुल का स्वामी कहा गया है। पुराणों के अनुसार उनकी पाठशाला में सहस्रों ऋषि अध्ययन करते थे। इतने विशाल विश्वविद्यालय के कुलपति होते हुए भी शौनक ब्रह्मजिज्ञासा को लेकर महर्षि अंगिरस् के समीप जाते हैं और उनसे एक जिज्ञासु शिष्य की भाँति विनम्र होकर प्रश्न करते हैं, इससे यह प्रेरणा प्राप्त होती है कि उच्च पदों को प्राप्त करके भी अहन्ता के वश में न होकर ब्रह्मज्ञान अर्जित करने के लिए श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों से सत्संग करते रहना चाहिए। भगवत्कथारसिक इन्हीं शौनक ऋषि ने अपने सभी अन्तेवासी ऋषियों के साथ नैमिष तीर्थ में सूतजी से श्रीमद्भागवत आदि पुराणों का भी विधिवत् श्रवण

किया था।

प्रस्तुत उपनिषत् के तृतीय मुण्डक में तत्त्वदर्शी को जगत्कारण ब्रह्म की परम समतारूप मोक्ष प्राप्त होने का वर्णन है, जो ब्रह्मविद्या का फल है- **निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।** (मु. उ.3.1.3), मुक्तावस्था में जीव परमात्मा के साधर्म्यरूप मोक्ष को प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी यही तथ्य वर्णित है- **इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।**

भगवान् श्री सीतारामजी महाराज के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि हमारे अत्यन्त आत्मीय आदरणीय स्वामी त्रिभुवन दास जी को अपने चरणों में विमलानुराग प्रदान करते हुए नैरुज्यदीर्घायुष्य प्रदान कर इसी प्रकार सत्साहित्य सृजन के माध्यम से साधक जगत् का परमहित सम्पादित कराते रहें।

**दासानुदास**
**राजेन्द्रदास**
व्याकरणवेदान्तसाहित्याचार्य
मलूकपीठ, वंशीवट, वृन्दावन

# सम्पादकीय

मुण्डकोपनिषद् की तत्त्वविवेचनी व्याख्या आप जैसे प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता हो रही है। इसमें मन्त्र के पश्चात् अन्वय और मन्त्र के पदों का अर्थ प्रस्तुत है, जिससे सामान्य पाठकों को भी मन्त्रार्थ सरलता से हृदयंगम हो सके। अर्थ के बाद गम्भीर, विस्तृत और हृदयग्राही व्याख्या सन्निविष्ट है। विषय वस्तु को अवगत कराने केलिए इसे समुचित शीर्षकों से अलंकृत किया गया है। इसके अध्ययन से विषय अनायास ही हृदयपटल पर अंकित होता चला जाता है, अध्येता महानुभाव इसका स्वयं अनुभव करेंगे। मन्त्र के यथाश्रुत अर्थ का बोध कराना ही हमारे व्याख्याकार आचार्य स्वामी जी को इष्ट है फिर भी कुछ स्थलों में अन्य मतों की संक्षिप्त समालोचना हुई है, जो कि प्रासंगिक है। ग्रन्थ के अन्त में आवश्यक परिशिष्ट सन्निविष्ट हैं, जिससे यह ग्रन्थ शोधकर्ताओं केलिए भी संग्राह्य है। हमारा विश्वास है कि हिन्दी माध्यम से उपनिषदों के अध्येता इस ग्रन्थ रत्न का आदर करेंगे।

# प्रस्तावना

त्रिविध सांसारिक संताप से संतप्त, अध्यात्मतत्त्वपिपासु, सनातन धर्मानुयायी मुमुक्षुजन के लिए तत्त्व, हित (हितकर) और पुरुषार्थ-निर्णयार्थ प्रस्थानत्रयी परम प्रमाण है। श्रुति प्रस्थान उपनिषत्, सूत्र प्रस्थान ब्रह्मसूत्र तथा स्मृति प्रस्थान श्रीमद्भगवद्गीता ये ही प्रस्थानत्रयी कहे जाते हैं। इतिहास, पुराण इन्हीं के उपबृंहणभूत हैं। उपलब्ध शताधिक उपनिषदों में 10 उपनिषदें प्रधानत्वेन परिगणित होती हैं। श्रुतिप्रतिपादित सविशेष अद्वैत ब्रह्म ही तत्त्व है। मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। आत्मस्वरूप और परमात्मस्वरूप को न जानने के कारण जीव का जन्ममरणात्मक संसारसागर में परिभ्रमण करना ही बन्धन है और इसकी निवृत्ति ही मोक्ष है। कर्म, ज्ञान और भक्ति ये हितकर साधन हैं। उनमें भक्तिरूपापन्न उपासनात्मिका ब्रह्मविद्या ही मोक्ष का साधन है। महाभाष्य के **नवधाऽऽथर्वणो वेदः** (महाभाष्य पस्पशाह्निक) इस वचन के अनुसार अथर्ववेद की 9 शाखाएं हैं। उनमें मुण्डक शाखा का उपनिषत् मुण्डकोनिषत्[1] है, जो कि इसके नाम से ही स्पष्ट है। इसमें तीन मुण्डक हैं, प्रत्येक मुण्डक दो-दो खण्डों में विभाजित है और सम्पूर्ण ग्रन्थ की मन्त्र संख्या 66 है।

इसमें वर्णित ब्रह्मा की परम्परा से प्राप्त ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा आचार्य अङ्गिरस ऋषि है, जिज्ञासु शिष्य शौनक एक बृहत् विश्वविद्यालय के आचार्य हैं। पुराणों के अनुसार उनसे अध्ययनकर्ता छात्रों की संख्या 80 हजार से अधिक थी। वेदादिशास्त्रों के निष्णात महर्षि शौनक यज्ञादि कर्म के अनुष्ठान से शाश्वत सुख की अप्राप्ति जानकर उसकी जिज्ञासा से गुरु के अन्वेषण में निरत होकर अङ्गिरस आचार्य के पास जाते हैं।

मानवमात्र में जिज्ञासा के बीज निहित होते हैं, जिनसे प्रेरित होकर वह समय-समय पर विशेषज्ञों के समक्ष प्रश्न को उपस्थित करता है

---

***टिप्पणी***- 1. मुण्डक-माण्डूक्य-तैत्तिरीयोपनिषन्नामनिर्देशे तु तत्तन्नामकशाखान्तर्गतोपनिषत्त्वमेव निबन्धनम्। मुण्डकशाखान्ते मुण्डकोपनिषत्। (उपनिषद्भूमिका पृष्ठ 248 तैत्तिरीय-ऐतरेय-छान्दोग्योपनिषत् भाष्यम् श्रीउत्तमूर वीरराघवाचार्य सेनेट्री ट्रस्ट चेन्नै)। स्वामी उपनिषद्ब्रह्मेन्द्रयोगी भी मुण्डकोपनिषत् को मुण्डकशाखान्तर्गत बताते हैं।

किन्तु उत्तरप्राप्ति के कुछ समय पश्चात् पुनः प्रश्न और उत्तर, इसी प्रकार आगे भी प्रश्नोत्तर का अविश्रान्त प्रवाह निरन्तर प्रवहित होता रहता है, इसका क्या कारण है? कारण का अनुसन्धान करने पर बौद्धिक वर्ग इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि हमारे प्रश्न का विषय परिपूर्ण वस्तु नहीं है अतः उसे जानने पर भी हमें स्थायी शान्ति प्राप्त नहीं होती। यदि कोई ऐसी वस्तु हो जिसके ज्ञान से सभी वस्तुएं ज्ञात हो जाएं, कोई भी वस्तु अज्ञात न रहे। जिसकी प्राप्ति से सब कुछ प्राप्त हो जाए, कुछ भी अप्राप्त न रहे और सभी दुःखों की आत्यन्तिकी निवृत्तिपूर्वक शाश्वत सुख की प्राप्ति हो, वही प्रष्टव्य है। प्रश्न का कारण जिज्ञासा तथा उसका मूल आवश्यकता होती है। जिसकी प्राप्ति से सब कुछ प्राप्त होने के कारण आवश्यकता ही समाप्त हो जाए, वही प्रष्टव्य है। वह वस्तु क्या है? जिसके जानने पर यह सब चराचर प्रपञ्च ज्ञात हो जाता है- **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति** (मु.उ.1.3) इस प्रकार शौनक आचार्य अङ्गिरस से प्रश्न करते हैं। ऐसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न को लेकर इस उपनिषत् का आरम्भ हुआ।

## मुण्डकोपनिषत् का सार

प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड में शौनक के प्रश्न करने पर अङ्गिरस् ने परा और अपरा इन दो विद्याओं को वेदितव्य कहा है, उनमें शिक्षा आदि अङ्गों के सहित सभी वेदों को अपराविद्या कहा है। जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, वह ब्रह्मविषयक अपरोक्ष ज्ञान पराविद्या है, उसका विषय ब्रह्म चक्षु आदि इन्द्रियों का अविषय, गोत्रादि से रहित, देश, काल और वस्तु परिच्छेद से रहित, अत्यन्त सूक्ष्म जगत्कारण और ज्ञानियों के द्वारा वेद्य है। वह महान् से महान् और अणु से भी अणु है, उससे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। ऊर्णनाभि दृष्टान्त से ब्रह्म को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण कहकर दूसरे दृष्टान्त से उसे अविकारी तथा उससे जगत् का वैलक्षण्य कहा है। परमात्मा के संकल्पात्मक ज्ञानरूप तप से जगत् की सृष्टि होती है। वह सबको स्वरूपतः जानता है और प्रकारतः भी जानता है। द्वितीयखण्ड में विद्या की निष्पत्ति के लिए अपेक्षित विहित कर्म, उनकी विधि, अविधिपूर्वक करने से हानि,

अग्नि की ज्वालाओं के भेद, काम्य कर्म करने वाले को विनाशी लोक की प्राप्ति, यज्ञरूप नौका का संसार सागर को पार करने में असामर्थ्य, काम्य कर्मी की निन्दा, उसका स्वर्ग से पतन, ब्रह्मोपासक को भगवल्लोक की प्राप्ति, विद्याग्रहणार्थ गुरु के समीप जाने की अनिवार्यता तथा विद्या के उपदेश की विधि वर्णित है। द्वितीय मुण्डक के प्रथम खण्ड में सुप्रज्वलित अग्नि से चिनगारियों की उत्पत्ति के समान ब्रह्म से विविध कार्य वर्ग की उत्पत्ति कही गयी है। इसके पश्चात् ब्रह्म के स्वरूप का, उससे प्राण, मन, इन्द्रियों और आकाशादि भूतों की उत्पत्ति का तथा विराटरूप का वर्णन करते हुए ब्रह्म को सभी भूतों का अन्तरात्मा कहा है फिर उसी से विविधविचित्र जगत् की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए उसकी सर्वरूपता तथा उसके साक्षात्कार से अविद्यानिवृत्ति कही गयी है। द्वितीय खण्ड में योगियों के अपरोक्ष ब्रह्म का हृदयगुहा में सन्निधान तथा सुलभ न होने से दुर्विज्ञेय नाम, जाग्रत आदि अवस्थाओं वाले प्राणियों का आधार, वरणीय तथा सबसे पर परमात्मा को कहकर उसे दीप्तिमान्, अणु से अणु, निर्विकार तथा प्राण आदि की ब्रह्मात्मकता कही है। परमात्मा वेधव्य लक्ष्य है। उसका वेधन (समाहित मन का विषय) करने के लिए प्रणव को धनुष और आत्मा को बाण कहा गया है। परमात्मप्रवण एकाग्र चित्त से प्रणवरूप धनुष को खींचकर उससे आत्मरूप बाण को लक्ष्य में स्थापित करना चाहिए। आकाशादि के आधार परमात्मा को जानना तथा अनात्मविषयक बातों को छोड़ना वर्णित है। रथ के चक्र की नाभि में संलग्न अर के समान संलग्न नाड़ियों वाले हृदय में परमात्मा की स्थिति, संसार से पार जाने के लिए ॐ का ध्यान कहकर दर्शनसमानाकार ध्यान से साक्षात्कार और इसी से हृदय की रागादि ग्रन्थियों का भेदन, संशयों तथा कर्मों का नाश तथा ब्रह्म की सर्वरूपता प्रतिपादित हुई है।

तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड में पक्षी के समान जीवात्मा और परमात्मा की एक शरीर में स्थिति, जीव के कर्मफल भोगने तथा परमात्मा के सदा आनन्दित रहने का वर्णन करके अचेतन देह के साथ संसर्ग होने से जीव का मोहित होना तथा स्वभिन्न परमात्मा और उसकी महिमा के साक्षात्कार से शोकनिवृत्ति तथा परमात्मा से परमसमतारूप

मोक्ष प्रतिपादित है। ब्रह्म की उपासना करते हुए सर्वातिशायी ब्रह्म का वक्ता होना, आत्मक्रीडा और आत्मरति को कहकर ब्रह्मविद्या के अङ्गभूत शास्त्रीय कर्म करने वाले को ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ कहकर सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और सम्यक् ज्ञान से हृदयस्थ परमात्मा साक्षात्करणीय कहा है। सत्य बोलने वाले की ही विजय और उसे ही देवयान की प्राप्ति होती है। बृहत्, दिव्य, अचिन्त्यरूपवाला तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परमात्मा परम पद में और हृदय गुहा में भी सन्निहित है। चक्षु आदि के अविषय परमात्मा का उनके अनुग्रह से अन्तःकरण निर्मल होने पर साक्षात्कार होता है। ब्रह्मदर्शी आत्मा अणु है और ब्रह्म विभु है, ऐसा कहकर ब्रह्मवेत्ता अर्चनीय कहा गया है। द्वितीय खण्ड में ब्रह्मज्ञ के द्वारा संसार का अतिक्रमण, अज्ञानी का कामनाओं के कारण विविध योनियों में जन्म और कृतार्थ की सभी कामनाओं की निवृत्ति, भगवदनुग्रह से साक्षात्कार, एकाग्र चित्त से परमात्मप्राप्ति और साक्षात्कार से तृप्त ज्ञानीजन का देशविशेष में जाकर परमात्मा को प्राप्त करना वर्णित है। जैसे नदियाँ अपने पूर्व नामरूपों को छोड़कर समुद्र में अविभक्त स्थित हो जाती हैं, वैसे ही ब्रह्मोपासक भी नामरूप से रहित होकर परमात्मा में अविभक्त स्थित हो जाता है। परब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। शिरोव्रत का अनुष्ठान न करने वाले को यह विद्या प्रदान नहीं करनी चाहिए, इत्यादि विषय वर्णित हैं।

## उपसंहार

जिसके ज्ञान से सब का ज्ञान होता है, उस ज्ञेय की जिज्ञासा से उपनिषत् आरम्भ होती है अतः इसमें वर्णित परब्रह्म, उसके सत्यसंकल्पत्व आदि गुण, उसके द्वारा की जाने वाली सृष्टि, उसका साक्षात्कार करने वाली आत्मा ये सब सत्य ही हैं, कल्पित नहीं। जिस मत में एक अधिष्ठान सत्य है और सब मिथ्या हैं इसलिए एक ब्रह्म का ज्ञान होने पर सब रहता ही नहीं, उस मत में एक के ज्ञान से सब के ज्ञान का कथन ही हास्यास्पद है। यदि सब मिथ्या होता तो एक के ज्ञान से सब का ज्ञान नहीं होता अपितु सबका बाध होता इसलिए 'एक के ज्ञान से सब का बाध होता है,' इस प्रकार ही श्रुति का कथन होना चाहिए किन्तु

ऐसा नहीं है, इससे सिद्ध होता है कि जगत् मिथ्या नहीं है।

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया** (मु.उ.3.1.1) यह श्रुति स्पष्टरूप से जीवात्मा और परमात्मा के भेद का निरूपण करती है तथा **जुष्टं यदा पश्यत्यन्मीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः** (मु.उ.3.1.2) यह श्रुति आत्मा से भिन्न परमात्मा के साक्षात्कार से मोक्ष का प्रतिपादन करती है। **निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति** यह श्रुति ब्रह्म के साधर्म्यरूप मोक्ष का प्रतिपादन करती है इसलिए पर ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाला ब्रह्म ही हो जाता है-**स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति** इसका भी अर्थ वही साधर्म्यापत्तिरूप मोक्ष है। इस प्रकार अन्य उपनिषदों की भाँति यह मुण्डकोपनिषत् भी विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म का ही प्रतिपादन करती है।

**सत्यमेव जयते** (मु.उ.3.1.6) यह भारतवर्ष का ध्येय वाक्य मुण्डकोपनिषत् का ही है तथा **वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थवन्तः** (मु.उ. 3.2.6) इस प्रकार वेदान्तशब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भी इसी उपनिषत् में मिलता है।

विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन ग्रन्थ के लेखन तथा तत्त्वत्रयम्, ईश, केन, कठ और प्रश्न के व्याख्या लेखन के पश्चात् जगज्जननी पराम्बा श्रीसीता माता तथा परात्पर प्रभु श्रीमद्रामचन्द्र के अहेतुक अनुग्रह से इस अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषत् का व्याख्यालेखन सम्पन्न हुआ।

श्रीरामानन्दाचार्यजयन्ती
वि.सं.2072

**स्वामी त्रिभुवनदास**
मङ्गलम् कुटीरम्, गंगालाइन,
स्वर्गाश्रम (ऋषीकेश)
उत्तराखण्ड, पिन- 249304
चलवाणी-8057825137(रात्रि 8-9)

# विषयानुक्रमणिका



# मुण्डकोपनिषत्

## परिशिष्ट

# मुण्डकोपनिषत्

## मूलपाठः

### शान्तिपाठः

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

**प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः**

हरिः ओम्
ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।।1।।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा अथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ।।2।।
शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ।।3।।
तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति, परा चैवापरा च।।4।।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदस्सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।।5।।
यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुश्श्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ।।6।।
यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।।7।।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात् संभवतीह विश्वम्।।8।।
तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।।9।।
यस्सर्वज्ञस्सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते।।10।।

।। इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः ।।

**प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः**

हरिः ओम्। तदेतत् सत्यम्।
मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि।
तान्याचरथ नियतं सत्यकामाः एष वः पन्थास्सुकृतस्य लोके।।1।।
यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने।
तदाऽऽज्यभागावन्तरेण आहुतीः प्रतिपादयेत्।।2।।
यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च।
अहुतमवैश्वदेवमविधिनाहुतमासप्तमान् तस्य लोकान् हिनस्ति।।3।।
काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः।।4।।
एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्।
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः।।5।।
एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्यः एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः।।6।।
प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढाः जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।।7।।
अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढाः अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः।।8।।
अविद्यायां बहुधा वर्तमानाः वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनाऽऽतुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।।9।।
इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।

नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वा इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।।10।।
तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।11।।
परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।12।।
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।।13।।
।। इति प्रथममुण्डके द्वितीयखण्डः ।।

**द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः**

हरिः ओम्। तदेतत् सत्यम्।।
यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाऽक्षरात् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति।।1।।
दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः।।2।।
एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।3।।
अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा।।4।।
तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्।
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् संप्रसूताः।।5।।
तस्मादृचस्सामयजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः।।6।।
तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च।।7।।
सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त।।8।।
अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसाश्च येनैष भूतैः तिष्ठते ह्यन्तरात्मा।।9।।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य।।10।।

।। इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ।।

**द्वितीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः**

हरिः ओम्।।
आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् अत्रैतत् समर्पितम्। एजत् प्राणन्निमिषच्च यद् एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद् यद् वरिष्ठं प्रजानाम्।।1।।
यदर्चिमद् यदणुभ्योऽणु यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च। तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदुवाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद् वेद्धव्यं सोम्य विद्धि।।2।।
धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्दधीत।
आयम्य तद्भावगतेन (तद्भागवतेन) चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि।।3।।
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।।4।।
यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः।।5।।
अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।।6।।
यः सर्वज्ञस्सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।।7।।
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति।।8।।
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।9।।
हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः।।10।।
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।11।।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।।12।।
।। इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ।।

## तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः

हरिः ओम्
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।1।।
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।2।।
यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।।3।।
प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भव तेनातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।।4।।
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।5।।
सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रामन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्।।6।।
बृहच्च तत् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्।।7।।
न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः।।8।।
एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा।।9।।
यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामान् तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः।।10।।
।। इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ।।

**तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः**

स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः॥1॥
कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनश्च इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः॥2॥
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥3॥
नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्म धाम॥4॥
संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति॥5॥
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु (तु) परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे॥6॥
गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति॥7॥
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥8॥
स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद, ब्रह्मैव भवति।
नास्याब्रह्मवित् कुले भवति। तरति शोकं, तरति पाप्मानम्।
गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति॥9॥
तदेतदृचाभ्युक्तम्।
क्रियावन्तः श्रोत्रिया: ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षि श्रद्धयन्तः।
तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्॥10॥
तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः प्रोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते।
नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः॥11॥

॥ इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥

**॥ मुण्डकोपनिषत् समाप्ता ॥**

# मुण्डकोपनिषत्

## तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्यासहित

येन व्याप्तमिदं सर्वं चेतनाऽचेतनात्मकम्।
विशुद्धसद्गुणौघं तं सीतारामं नमाम्यहम् ।।1।।
सूत्रवृत्तिकृतौ नत्वा व्यासबोधायनौ मुनी।
भाष्यकर्तारमाचार्यं प्रणमामि पुनः पुनः ।।2।।
विद्याचार्यान् हनूमन्तं गङ्गां च श्रीगुरुं भजे।
मुण्डकोपनिषद्व्याख्या रुचिरा क्रियते मया।।3।।

### शान्तिपाठः

**ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।**
**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।**
**स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।**

**ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।**

**अन्वय**

देवाः कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम। यजत्राः अक्षभिः भद्रं पश्येम। यद् आयुः देवहितं स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः तुष्टुवांसः व्यशेम। वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति। विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति। अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति। बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु।

**अर्थ**

**देवाः**- हे देवताओ! (हम सब) **कर्णेभिः**- कानों से **भद्रम्**- मङ्गलमय (परमात्मा के प्रतिपादक वेदान्त) वचनों को **शृणुयाम**- सुनें। **यजत्राः**-आराधना करते हुए (हम सब) **अक्षभिः**- आँखों से (परमात्मा के) **भद्रम्**- मङ्गलमय रूप को **पश्येम**- देखें। हम लोगों की **यद्**- जो **आयुः**- आयु है। **देवहितम्**- परमात्मा की सेवा के लिए प्राप्त उस आयु को **स्थिरैः**- स्वस्थ **अङ्गैः**- अङ्गों वाले **तनूभिः**- शरीरों से (युक्त होकर हम सब) परमात्मा की **तुष्टुवांसः**- स्तुति करते हुए **व्यशेम**- व्यतीत करें। **वृद्धश्रवाः**- महान् कीर्ति वाला **इन्द्रः**- इन्द्र **नः**- हमारा (हमें) **स्वस्ति**- मङ्गल (मङ्गलमय परमात्मा का साक्षात्कार प्रदान) करे। **विश्ववेदाः**- सर्वज्ञ **पूषा**- सूर्य देवता (श्रवण का सामर्थ्य देकर) **नः**- हमारा **स्वस्ति**- मङ्गल करे। **अरिष्टनेमिः**[1]- सर्वत्र अव्याहत गति वाले **तार्क्ष्यः**- गरुड देवता (मनन का सामर्थ्य देकर) **नः**- हमारा **स्वस्ति**- मङ्गल करे। **बृहस्पतिः**- बृहस्पति देवता (निदिध्यासन का सामर्थ्य देकर) **नः**- हमें **स्वस्ति**- मङ्गल **दधातु**- प्रदान करे। **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः**- त्रिविध तापों की शान्ति हो।

## प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः

**हरिः ओम्**

**ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।**
**स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥1॥**

**अन्वय**

विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव। सः ज्येष्ठपुत्राय अर्थवाय सर्वविद्याप्रतिष्ठां ब्रह्मविद्यां प्राह।

**अर्थ**

**विश्वस्य**- सम्पूर्ण लोक का **कर्ता**- उत्पादक (और सम्पूर्ण)

---

**टिप्पणी**- 1. अरिष्टा अकुण्ठिता अप्रतिबद्धा नेमिर्गतिः यस्य सः अरिष्टनेमिः।

**भुवनस्य**- लोक का **गोप्ता**- रक्षक **ब्रह्मा**-ब्रह्मा **देवानाम्**-देवताओं में **प्रथमः**- सर्वप्रथम **संबभूव**-उत्पन्न हुआ। **सः**- उसने (अपने) **ज्येष्ठपुत्राय**- ज्येष्ठपुत्र **अथर्वाय**[1]- अथर्व को **सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्**- सभी विद्याओं का आश्रय **ब्रह्मविद्याम्**- ब्रह्मविद्या का **प्राह**-उपदेश किया।

**व्याख्या**

**ब्रह्मविद्या की परम्परा**

परब्रह्म परमात्मा से रुद्र तथा इन्द्रादि देवताओं की उत्पत्ति से पूर्व ब्रह्मा उत्पन्न हुए। परमात्मा ने प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न किया- **हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्** (श्वे.उ.3.4), **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्** (श्वे.उ. 6.18)। परमात्मा 14 भुवनों वाले ब्रह्माण्ड का निर्माण करके ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं और पालन भी स्वयं करते हैं ब्रह्मा तो केवल व्यष्टि सृष्टि करते हैं तथापि ब्रह्मविद्या की महिमा सूचित करने के लिए प्रस्तुत मन्त्र में ब्रह्मा को सकल भुवनों का उत्पादक और पालक कहा गया है। जिस विद्या का उपदेश करने वाला महान् है, वह विद्या भी महान् है, इस प्रकार विद्या की महिमा सूचित होती है। ज्ञेय ब्रह्म के अन्तर्गत सभी ज्ञेय पदार्थ हैं इसलिए एक ब्रह्मविद्या (ब्रह्मज्ञान) के अन्तर्गत सभी विद्याएं हैं अतः यह मुण्डकश्रुति ब्रह्मविद्या को सर्वविद्याप्रतिष्ठा कहती है। परमात्मा ब्रह्मा को वेद प्रदान करता है- **यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै** (श्वे.उ.6.18)। वेद के अन्तर्गत उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्या है अतः वे ही ब्रह्मा को ब्रह्मविद्या प्रदान करने वाले हैं। इस प्रकार ब्रह्मविद्यासंप्रदाय के आद्य प्रवर्तक स्वयं भगवान् हैं। ब्रह्मा ने अपने पुत्र अथर्व को योग्यता में ज्येष्ठ समझकर सभी विद्याओं का आश्रय अमूल्यनिधि ब्रह्मविद्या का उपदेश किया।

**अथर्वणे[2] यां प्रवदेत[3] ब्रह्मा अथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।**
**स भारद्वाजाय सत्यवाहाय[4] प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥2॥**

---

**टिप्पणी**- **1.** अथर्वशब्दोऽकारान्तोऽत्र गृहीतः(आ.भा.)। **2.** अत्र अथर्वशब्दः नान्तः विवक्षितः, नान्तादन्तयोः उभयोरपि अथर्वशब्दयोः सत्त्वात् (आ.भा.)। **3.** प्रावदद् इत्यर्थः, व्यत्ययेन लङर्थे लिङ्(उ.ख.)। **4.** 'सत्यवहाय' इति शांकरभाष्यसम्मतः माध्वभाष्यसम्मतश्च पाठः।

**अन्वय**

ब्रह्मा अथर्वणे यां प्रवदेत, तां ब्रह्मविद्याम् अथर्वा पुरा अङ्गिरे उवाच। सः भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह, भारद्वाजः परावराम् अङ्गिरसे।

**अर्थ**

**ब्रह्मा**- ब्रह्मा ने **अथर्वणे**- अथर्वा को **याम्**- जो ब्रह्मविद्या **प्रवदेत**- कही। **ताम्**- उस **ब्रह्मविद्याम्**- ब्रह्मविद्या को **अथर्वा**- अथर्वा ने **पुरा**- पहले **अङ्गिरे**- अङ्गिर ऋषि को **उवाच**- कहा। **सः**- अङ्गिर ऋषि ने (उसी विद्या का) **भारद्वाजाय**- भरद्वाज गोत्र में उत्पन्न **सत्यवाहाय**- सत्यवाह को **प्राह**- उपदेश किया। **भारद्वाजः**- सत्यवाह ऋषि ने (उस) **परावराम्**- ब्रह्मविद्या का **अङ्गिरसे**- अङ्गिरा ऋषि को उपदेश किया।

**व्याख्या**

श्रेष्ठ आचार्य से कनिष्ठ शिष्य ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता है इसलिए वह परावरा कही जाती है- **परस्माद् अवरेण प्राप्तेति परावरा** (प्रका.) अथवा अन्य श्रेष्ठ विद्याएं जिस विद्या की अपेक्षा अवर हैं, वह ब्रह्मविद्या परावरा कहलाती है- **परा इतरा विद्या अवराः अपकृष्टाः सन्ति यस्या अपेक्षया सा परावरा ब्रह्मविद्या।** (आ.भा.)।

**शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ।**
**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥3॥**

**अन्वय**

महाशालः ह वै शौनकः विधिवत् अङ्गिरसं उपसन्नः, पप्रच्छ भगवः! नु कस्मिन् विज्ञाते इदं सर्व विज्ञातं भवति इति।

**अर्थ**

**महाशालः**[1]- विशाल पाठशाला का स्वामी **ह वै**- प्रसिद्ध **शौनकः**[2]-

---

**टिप्पणी**- 1. महती शाला पाठशाला यस्य सः।
2. शुनकसुतः(प्रदी.)।

शौनक ऋषि **विधिवत्**- शास्त्रविधि के अनुसार **अङ्गिरसम्**- आचार्य अङ्गिरा के **उपसन्नः**- समीप गया (और) **पप्रच्छ**- पूँछा (कि) **भगवः**- हे भगवन्! **नु**- वस्तुतः **कस्मिन्**- किसे **विज्ञाते**-जान लेने पर **इदम्**- यह **सर्वम्**- सब **विज्ञातम्**- जाना हुआ **भवति**- हो जाता है।

**व्याख्या**

**ब्रह्मजिज्ञासा**

शुनकऋषि के पुत्र को शौनक कहते हैं। विशाल गुरुकुल के स्वामी होने से वे महाशाल कहे गये हैं। उन्होंने हाथ में समिधा लेकर आचार्य अङ्गिरा के पास जाकर प्रश्न किया कि हे भगवन्[1]! किस वस्तु के ज्ञात होने पर चराचर सब ज्ञात हो जाता है। पूर्व मन्त्र में कहा था कि ब्रह्मविद्या सभी विद्याओं की प्रतिष्ठा है अर्थात् ब्रह्मज्ञान सभी ज्ञानों का आश्रय है इसलिए ब्रह्म ज्ञात होने पर सब प्रपञ्च ज्ञात हो जाता है। ऐसा समझकर जगत्कारण ब्रह्म का स्वरूप पूँछा जा रहा है। मिट्टी कारण है, घट, कुल्हड, शराव आदि कार्य हैं। सुवर्ण कारण है, मुकुट, कुण्डल आदि कार्य हैं। मिट्टी ज्ञात होने पर "घट आदि सभी पदार्थ मिट्टी ही हैं" इस प्रकार घटादि सब का ज्ञान हो जाता है और सुवर्ण ज्ञात होने पर "मुकुट आदि सब सुवर्ण ही हैं" इस प्रकार मुकुट आदि सब ज्ञात हो जाते हैं। जगत् कार्य है, इसके कारण को जान लेने पर सम्पूर्ण जगत् ज्ञात हो जाता है, ऐसा हमने सामान्यरूप से आप जैसे विद्वानों से सुना है। अब आप बताएं कि वह ज्ञेय कौन है? इस प्रकार यह जगत्कारण[2] विषयक प्रश्न है।

---

**टिप्पणी**- 1. भगवान् शब्द का अर्थ प्रश्नोपनिषत् के प्रथम मन्त्र (1.1)की तत्त्वविवेचनी व्याख्या में देखना चाहिए।

2. इस विषय को विस्तार से समझने के लिए विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन ग्रन्थ में अभिन्ननिमित्तोपादान कारण, एक के विज्ञान से सब के विज्ञान की प्रतिज्ञा और वाचारम्भण श्रुति का अर्थ इन प्रकरणों को देखना चाहिए।

**तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति[1] ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति, परा चैवापरा च॥4॥**

**अन्वय**

ह सः तस्मै उवाच। यत् परा च अपरा च द्वे विद्ये एव वेदितव्ये इति ह स्म ब्रह्मविदः वदन्ति।

**अर्थ**

**ह**- प्रसिद्ध **सः**- अङ्गिरा ऋषि ने **तस्मै**- शौनक को **उवाच**- कहा(कि) **यत्**- जिसे जानने के लिए **परा**- परा **च**- और **अपरा**- अपरा **द्वे**- दो **विद्ये**- विद्याएं **एव**- ही मुमुक्षु के द्वारा **वेदितव्य[2] इति**- ऐसा **ह स्म[3]**- प्रसिद्ध **ब्रह्मविदः**- ब्रह्मज्ञानी **वदन्ति**- कहते आए हैं, वह ज्ञात होने पर सब ज्ञात हो जाता है।

**व्याख्या**

**ब्रह्मविद्या**

हे भगवन्! किसके ज्ञात होने पर सम्पूर्ण प्रपञ्च ज्ञात हो जाता है? **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति** (मु.उ.1.1.3) इस प्रकार शौनक ने पूर्व में ब्रह्मस्वरूप की जिज्ञासा की थी। जिसका समाधान चतुर्थ और पञ्चम मन्त्र में है अतः "जिसे जानने के लिए परा और अपरा दो विद्याएं मुमुक्षु को प्राप्त करनी चाहिए, ऐसा ब्रह्मज्ञ महापुरुष कहते आए हैं, उसका ज्ञान होने पर सबका ज्ञान हो जाता है," यह उत्तर प्रश्न के अनुरूप होता है। इससे दोनों विद्याओं का विषय एक ही ब्रह्म सिद्ध होता है अतः परमात्मा को विषय करने वाली परा विद्या है तथा धर्म-अधर्म, उनके साधन और फल को विषय करने वाली

---

**टिप्पणी**- 1. 'इति' इत्यनुक्त्वा 'इति ह' इत्युक्तिः **द्वे विद्ये वेदितव्ये** इति वाक्यम् ऐतिह्यरूपेण परम्परया प्रवृतमिति दर्शयितुम्।

2. ओदनपाकं पचतीतिवत् द्वे विद्ये वेदितव्ये इति उक्तिः(श्रु. प्र.1.2.23)।

3. भाषा को लच्छेदार बनाने के लिए भी स्म शब्द का प्रयोग होता है, उसका वाक्य में कोई भी अर्थ नहीं होता. पादपूर्ति के लिए भी इसका प्रयोग होता है।

अपरा विद्या है- **परा च परमात्मविद्या, अपरा च धर्माधर्मसाधननतत्फलविषया।** (शां.भा.1.1.4) इस प्रकार दोनों विद्याओं का भिन्न विषय प्रतिपादित करने वाला व्याख्यान श्रुति के अनुरूप नहीं है। मुमुक्षु के लिए ही यह प्रकरण है इस कारण उसके लिए ही दोनों विद्याएं उपदिष्ट हैं।

**तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदस्सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम्[1] इति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते॥5॥**

**अन्वय**

तत्र ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः अथर्ववेदः शिक्षा कल्पः व्याकरणं निरुक्तं छन्दः ज्योतिषम् इति अपरा। अथ यया तत् अक्षरम् अधिगम्यते परा।

**अर्थ**

**तत्र**- उन दोनों (परा और अपरा विद्याओं) में **ऋग्वेदः**- ऋग्वेद **यजुर्वेदः**- यजुर्वेद **सामवेदः**- सामवेद **अथर्ववेदः**- अथर्ववेद **शिक्षा**- शिक्षा **कल्पः**- कल्प **व्याकरणम्**- व्याकरण **निरुक्तम्**- निरुक्त **छन्दः**- छन्द (और) **ज्योतिषम्**- ज्योतिष **इति**- यह **अपरा**- अपरा विद्या है। **अथ**- और **यया**- जिस विद्या के द्वारा **तत्**- वह **अक्षरम्**- अविनाशी परमात्मा **अधिगम्यते**- साक्षात्कृत होता (प्रत्यक्ष जाना जाता) है। वह **परा**- परा विद्या है।

**व्याख्या**

**अपरा विद्या**

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये 4 वेद हैं तथा शिक्षा,

---

**टिप्पणी**- 1. ज्योतिषम्' इति अनन्तरः 'इतिहासपुराणं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणि' इत्यपि पाठः दृश्यते भावप्रकाशिकायाम् (1.2.22) तदनुसृत्य उत्तमूर वीरराघवाचार्यसम्पादिते संस्करणे।

कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये 6 वेद के अङ्ग हैं। अध्यात्मविद्या प्रधान हमारे देश में प्राचीनकाल से ही अङ्गों के सहित वेद के अध्ययन की परम्परा रही है, उपनिषत् भी वेद के अन्तर्गत हैं। वेद का पूर्व (कर्मकाण्ड) भाग कर्म का प्रतिपादन करता है, ब्रह्म का नहीं ऐसा कथन उचित नहीं क्योंकि उसमें भी ब्रह्म के साक्षात् प्रतिपादक अनेकों मन्त्र विद्यमान हैं। उत्तर (ज्ञानकाण्ड अर्थात् उपनिषद्) भाग आराध्य ब्रह्म का बहुलता से प्रतिपादन करता है और पूर्व भाग उनके आराधनारूप कर्मों का बहुलता से प्रतिपादन करता है, फिर भी समग्रवेदों का प्रधान प्रतिपाद्य ब्रह्म ही है। सम्पूर्ण वेद जिस प्राप्य ब्रह्म का वर्णन करते हैं- **सर्वे वेदाः यत्पदम् आमनन्ति** (क.उ.1.2.15) सभी वेदों से वेद्य मैं (ब्रह्म) ही हूँ- **वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः** (गी.15.15)। शास्त्रजन्य ब्रह्मविषयकज्ञान अपरा विद्या है, वह परोक्ष है, उसके साधन शिक्षा आदि अङ्गों के सहित चारों वेद हैं , इसलिए श्रुति उन सभी (6अङ्ग+4वेद ) को उपचार से अपरा विद्या कहती है।

## परा विद्या

ब्रह्म को विषय करने वाला अपरोक्ष (साक्षात्कारात्मक अर्थात् प्रत्यक्ष) ज्ञान पराविद्या है। वह आचार्य से वेदान्तश्रवण (परोक्षज्ञान प्राप्त करने) के पश्चात् योग (धारणा-ध्यान) और विवेकादि साधनसप्तक[1] के अनुष्ठान से होती है। यही भक्तिरूपापन्न पराविद्या ब्रह्मप्राप्ति का अव्यवहित उपाय है, इसकी पूर्वावस्था परोक्षात्मिका अपरा विद्या है। वह परा विद्या के द्वारा उपाय होती है अतः व्यवहित उपाय है।

महर्षि पराशर ने कहा है कि हे महामुने! परब्रह्म की प्राप्ति का साधन ज्ञान और कर्म कहा जाता है। शास्त्रश्रवण से होने वाला परोक्ष ज्ञान तथा विवेक आदि साधन सप्तक की सहायता से होने वाला अपरोक्ष ज्ञान के भेद से ज्ञान दो प्रकार का होता है - **तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म[2] चोक्तं महामुने!॥ आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तदुच्यते।** (वि.पु. 6.5.60-61) इस प्रकार परमात्मप्राप्ति का हेतु दोनों प्रकार का ज्ञान

---

**टिप्पणी**- 1. 'साधनसप्तक' विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन ग्रन्थ में द्रष्टव्य है।

2. कर्म ब्रह्मज्ञान के द्वारा ब्रह्मप्राप्ति का हेतु बनता है।

कहा गया है इसलिए दोनों ज्ञानों का विषय एक ही ज्ञात होता है अतः दोनों ज्ञानों के भिन्न विषय का प्रतिपादक शांकरभाष्य(मु.उ.1.1.4) प्रस्तुत उपबृंहणवचन से भी विरुद्ध है। विवेक आदि साधनसप्तक की सहायता से शास्त्रजन्य परोक्षज्ञान से होने वाला साक्षात्कारात्मकज्ञान परा विद्या है, उससे परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

***कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति*** *।(मु.उ.1. 1.3) इस प्रकार पूर्व में जगत्कारण ब्रह्म की जिज्ञासा की गयी थी और बाद में* ***परा यया तदक्षरमधिगम्यते*** *(मु.उ.1.1.5) इस प्रकार परा विद्या के द्वारा उसका साक्षात्कार कहा गया था। अब इस मन्त्र से साक्षात्करणीय जगत्कारण ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया जाता है-*

**यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुश्श्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥6॥**

**अन्वय**

यत् तत् अद्रेश्यम् अग्राह्यम् अगोत्रम् अवर्णम् तत् अचक्षुश्श्रोत्रम् अपाणिपादम्। यत् नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तत् भूतयोनिम् अव्ययं धीराः परिपश्यन्ति।

**अर्थ**

**यत्**- परा विद्या से प्राप्य **तत्**- अक्षर ब्रह्म **अद्रेश्यम्**- ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान का अविषय **अग्राह्यम्**- कर्मेन्द्रियों के कार्य का अविषय **अगोत्रम्**- कुल से रहित **अवर्णम्**- ब्राह्मण आदि वर्ण से रहित अथवा शुक्लत्व, नीलत्व आदि रूप से रहित है। **तत्**- वह **अचक्षुश्श्रोत्रम्**- चक्षु, श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियों से रहित (तथा) **अपाणिपादम्**- हस्त, पाद आदि कर्मेन्द्रियों से रहित है। **यत्**- जो **नित्यम्**- नित्य है, **विभुम्**- विभु है, **सर्वगतम्**- सब में विद्यमान है, (और) **सुसूक्ष्मम्**- अत्यन्त सूक्ष्म है **तत्**- अद्रेश्यत्व आदि से विशिष्ट **भूतयोनिम्**- जगत् के उपादान कारण (उस)**अव्ययम्**- अक्षर ब्रह्म का **धीराः**- ब्रह्मज्ञानी **परिपश्यन्ति**- साक्षात्कार करते हैं।

**व्याख्या**

**ब्रह्मस्वरूप**

**अद्रेश्यम्**

चक्षु से रूप और रूपवान् पदार्थ का ज्ञान होता है। श्रोत्र से शब्द का घ्राण से गन्ध का रसना से रस का तथा त्वक् से स्पर्श और स्पर्शवान् पदार्थ का ज्ञान होता है, इन सभी से भिन्न ब्रह्मस्वरूप है इसलिए उसका चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता। मन भी ज्ञानेन्द्रिय है किन्तु अशुद्ध मन से उसका ज्ञान नहीं होता इसलिए उसे अद्रेश्यम् कहते हैं। चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों से होने वाले ज्ञान के अविषय को अद्रेश्यम् कहते हैं- **अद्रेश्यम् ज्ञानेन्द्रियाविषयः** (श्रु.प्र.1.2.22)।

**अग्राह्यम्**

पाणि (हस्त) इन्द्रिय का कार्य है- ग्रहण करना, उससे जिस वस्तु को ग्रहण करते हैं, उसे ग्राह्य कहते हैं, इसका अर्थ है - पाणि इन्द्रिय से होने वाले ग्रहण का विषय घटादि पदार्थ, इससे भिन्न को अग्राह्य कहते हैं। यह सभी कर्मेन्द्रियों से होने वाले कार्य के अविषय का बोधक है। जैसे वाक् इन्द्रिय का कार्य है - उच्चारण करना (बोलना), उससे जिस शब्द का उच्चारण करते हैं, वह (शब्द) उच्चारण का विषय होता है किन्तु ब्रह्मस्वरूप तो पाणि और वाक् आदि इन्द्रियजन्य कार्य का अविषय है इसलिए अग्राह्य है।

**अगोत्रम्**

परमात्मस्वरूप का कोई गोत्र या कुल नहीं है- अतः वह अगोत्र कहा जाता है।

**अवर्णम्**

ब्रह्म का ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि कोई वर्ण नहीं है अतः वह अवर्ण कहा जाता है अथवा वर्ण का अर्थ है - शुक्ल, नील पीतादि रूप, उससे रहित होने के कारण ब्रह्मस्वरूप को अवर्ण कहा जाता है।

**अचक्षुःश्रोत्रम्**

यहाँ चक्षुःश्रोत्रम् पद अन्य ज्ञानेन्द्रियों का उपलक्षण है। परमात्मस्वरूप

चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों से रहित है, इस कारण अचक्षुः- श्रोत्र कहा जाता है। परमात्मा की प्राकृत चक्षु आदि इन्द्रियाँ नहीं होतीं किन्तु अप्राकृत इन्द्रियाँ होती हैं तथापि उनका ज्ञान इन्द्रियनिरपेक्ष है, इन्द्रियसापेक्ष नहीं इसीलिए श्रुति कहती है कि परमात्मा चक्षु के विना देखता है और श्रोत्र के विना सुनता है- **पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः** (श्वे.उ.3.19)।

**अपाणिपादम्**

परमात्मस्वरूप हस्त, पाद आदि कर्मेन्द्रियों से रहित है इसलिए अपाणिपाद कहा जाता है। परमात्मा का प्राकृत हस्त पादादि इन्द्रियाँ न होने पर भी अप्राकृत इन्द्रियाँ होती हैं तथापि उनके आदान-प्रदान तथा गमन आदि कार्य इन्द्रियसापेक्ष नहीं होते, इन्द्रियनिरपेक्ष ही होते हैं- इसीलिए श्रुति कहती है कि हस्त-पादादि से रहित परमात्मा वेग से चलने वाला है और ग्रहण करने वाला है- **अपाणिपादो जवनो ग्रहीता** (श्वे.उ.3.19)।

**नित्यम्**

काल से अपरिच्छिन्न वस्तु नित्य कही जाती है। जो वस्तु एक काल में रहे, दूसरे काल में न रहे। वह काल से परिच्छिन्न होती है, इससे भिन्न सभी काल में रहने वाले परमात्मा हैं अतः वे कालाऽपरिच्छिन्न अर्थात् नित्य हैं।

**विभुम्**

देश(स्थान) से अपरिच्छिन्न वस्तु विभु कही जाती है। जो वस्तु एक देश में रहे, दूसरे में न रहे वह देशपरिच्छिन्न होती है, उससे भिन्न देशाऽपरिछिन्न (सभी देश में रहने वाला) परमात्मा है अतः वह विभु कहलाता है।

**सर्वगतम्**

चेतनाचेतनरूप सभी जगत् में नियन्तारूप से प्रवेश करके रहने वाले परमात्मा सर्वगत कहलाते हैं, इसका अर्थ है वस्तुपरिच्छेद[1] से रहित।

---

**टिप्पणी**- 1. इसे विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन ग्रन्थ में ब्रह्मविवेचन के अन्तर्गत अनन्त पद की व्याख्या में देखना चाहिए।

**सुसूक्ष्मम्**

ब्रह्मस्वरूप सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ में भी प्रवेश करके विद्यमान रहता है क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म है ऐसा होने से वह सुसूक्ष्म कहलाता है।

**भूतयोनिम्**

जगत्कारण ब्रह्म को भूतयोनि कहते हैं- **भूतयोनित्वं जगत्कारणत्वम्** (श्रु.प्र.1.1.1)

**अव्ययम्**

अपचय अर्थात् क्षीणतारूप विकार से रहित ब्रह्म अव्यय कहलाता है।

ब्रह्मवेत्ता पराविद्या से अद्रेश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण, अचक्षु:श्रोत्र, अपाणिपाद, नित्य, विभु, सर्वगत, सुसूक्ष्म जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण अव्यय परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।

*अभी भूतयोनि शब्द से जगत् का उपादानकारण ब्रह्म कहा गया किन्तु वह संभव नहीं क्योंकि घटादि का उपादान कारण मिट्टी आदि ही होती है, ब्रह्म नहीं इस शंका का समाधान करने के लिए आगे की श्रुतियां प्रवृत्त होती हैं-*

**[1]यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥7॥**

**अन्वय**

यस्मात् परम् अपरं न अस्ति। यस्मात् अणीयः किञ्चित् न अस्ति, ज्यायः कश्चित् न। एकः वृक्षः इव स्तब्धः दिवि तिष्ठति। तेन पुरुषेण इदं सर्वं पूर्णम्।

---

**टिप्पणी**- 1. यह मन्त्र कुछ संस्करणों में नहीं देखा जाता है और होने पर भी कुछ आचार्यों ने व्याख्या नहीं की किन्तु श्रुतप्रकाकिकार सुदर्शनसूरि ने इसे उद्धृत किया है। यह मन्त्र श्वेताश्वतर(3.9) तथा तैत्तिरीयनारायणोपनिषत्(85) में भी मिलता है।

### अर्थ

**यस्मात्**- जिससे **परम्**- श्रेष्ठ **अपरम्**- दूसरा **न**- नहीं **अस्ति**- है। **यस्मात्**- जिससे **अणीयः**- सूक्ष्म **किञ्चित्**- कुछ **न**- नहीं **अस्ति**- है। जिससे **ज्यायः**- महान् **कश्चित्**- कोई **न**- नहीं है। **एकः**- प्रधान परमात्मा **वृक्षः इव**- वृक्ष के समान **स्तब्धः**[1]- शान्त होकर **दिवि**- परम पद में **तिष्ठति**- रहता है। **तेन**- उस **पुरुषेण**- परब्रह्म से **इदम्**- यह **सर्वम्**- सब **पूर्णम्**-व्याप्त है।

### व्याख्या

परमात्मा से श्रेष्ठ अन्य वस्तु नहीं है। हे अर्जुन! मुझ परमात्मा से उत्कृष्ट कोई वस्तु नहीं है- **मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय** (गी.7.7) ऐसा श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं। परमात्मा से सूक्ष्म कोई वस्तु नहीं है और महान् भी कोई नहीं है। कठश्रुति भी **अणोरणीयान् महतो महीयान्** (क.उ.1.2.20) इस प्रकार परब्रह्म को सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा महान् से महान् कहती है। वेदान्तदेशिक स्वामी ईशावास्योपनिषत् के भाष्य में एक शब्द का अर्थ प्रधान अथवा जो अपने अधीन न हो, ऐसी अपने समान द्वितीय वस्तु से रहित- **एकं प्रधानभूतं स्वानधीनस्वसमान-द्वितीयरहितं वा** (वे.भा.4) अर्थ करते हैं। वस्तुत्वेन सभी चेतन-अचेतन की परब्रह्म से समानता है, चेतनत्वेन चेतन आत्मा की परब्रह्म से समानता है किन्तु ये सब उनके अधीन ही है, स्वतन्त्र नहीं अतः जो परब्रह्म के अधीन न हो ऐसी द्वितीय वस्तु है ही नहीं इसलिए वे वैसी वस्तु से रहित हैं। अपने से भिन्न सभी वस्तुओं से विलक्षण व्यापक परमात्मा शान्त होकर अप्राकृत धाम में भी रहते हैं।

### उपादानकारण ब्रह्म

सर्वात्मा ब्रह्म सबके अन्दर प्रविष्ट होकर नियमन करने वाला है- **अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा** (तै.आ.3.11.3) सबके भीतर प्रविष्ट होने से नियन्ता परमात्मा के द्वारा चेतनाचेतन सम्पूर्ण जगत् व्याप्त

---

**टिप्पणी**- 1. मन्तव्याभावाद् वृक्षवदप्रणतस्वभावः सन् (प्रका.)।

है- **तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्** (श्वे.उ.3.9) **ईशावास्यमिदं सर्वम्** (ई.उ.1)। इस संसार में जो कुछ दिखाई देता है या सुनाई देता है, उस सबको भीतर और बाहर से व्याप्त करके नारायण स्थित है- **यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा। अन्तर्बहिश्चतत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः** (तै.ना.उ.94)। **यस्य पृथिवी शरीरम्** (बृ.उ.3.7.7), **यस्य आपः शरीरम्** (बृ.उ.3.7.8) इत्यादि अन्तर्यामी ब्राह्मण की श्रुतियाँ पृथिवी आदि सभी पदार्थों को परब्रह्म का शरीर कहती है, परब्रह्म उनमें रहने वाले शरीरी आत्मा हैं, आधार हैं। पृथिवी आदि शरीरभूत पदार्थ उनके विशेषण होकर रहते हैं। जैसे- गोत्व विशेषण का बोधक गो शब्द गोत्व का बोध कराते हुए गोत्वविशिष्ट गो का बोध कराता हैं, वैसे ही मिट्टी विशेषण का वाचक मिट्टी शब्द मिट्टी का बोध कराते हुए मिट्टीविशिष्ट ब्रह्म का भी बोध कराता है। इस प्रकार परब्रह्म के शरीरभूत मिट्टी आदि के बोधक शब्द शरीरी परब्रह्म के भी बोधक सिद्ध होते हैं, अतः घट का उपादान कारण मिट्टी है अर्थात् मृत्शरीरक (मिट्टी शरीर है जिसका वह) ब्रह्म घट का उपादान कारण है और पट का उपादान कारण तन्तु है अर्थात् तन्तुशरीरक ब्रह्म पट का उपादान कारण है, इस प्रकार सभी कार्यों का उपादानकारण ब्रह्म ही ज्ञात होता है।

लोक में उस उपादानकारण के ज्ञान से सभी कार्यों का ज्ञान होता है, जिस (उपादान) से भिन्न निमित्तकारण होता है,जैसे घट के उपादान मिट्टी से भिन्न उसका निमित्तकारण कुलाल है, अतः मिट्टी के ज्ञान से घटादि (सब मिट्टी ही हैं, इस प्रकार) सब का ज्ञान होता है। उपादानकारण ब्रह्म के ज्ञान से सभी कार्य का ज्ञान होता है तो क्या ब्रह्म से भिन्न कोई वस्तु जगत् का निमित्त कारण है? उपादान कारण विकृत होकर ही कार्यरूप होता है, जैसे दूध विकृत होकर दधि होता है इसी प्रकार क्या ब्रह्म भी विकार वाला होता है? मृन्मय कार्य ही मिट्टी से उत्पन्न होते हैं और सुवर्णमय कार्य सुवर्ण से उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार कार्य और कारण में समानता होती है तो एक ब्रह्म से परस्पर विलक्षण अनन्त जगत् कैसे उत्पन्न होता है? ऐसी आशंकाएं होने पर कहते हैं-

**यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति।**
**यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात् संभवतीह विश्वम्॥8॥**

**अन्वय**

यथा उर्णनाभिः सृजते च गृह्णते। यथा पृथिव्याम् ओषधयः संभवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि, तथा इह अक्षरात् विश्वं संभवति।

**अर्थ**

**यथा**- जिस प्रकार **ऊर्णनाभिः**- मकड़ी (जाले को) **सृजते**- बनाती है। **च**- और **गृह्णते**- समाप्त कर देती है। **यथा**- जिस प्रकार **पृथिव्याम्**- पृथिवी में **ओषधयः**- वनस्पतियाँ **संभवन्ति**-उत्पन्न होती हैं। **यथा**- जिस प्रकार **सतः**- जीवित **पुरुषात्**- पुरुष से **केशलोमानि**- केश और लोम उत्पन्न होते हैं। **तथा**- उसी प्रकार **इह**- सृष्टिकाल में **अक्षरात्**- अक्षर ब्रह्म से **विश्वम्**- सम्पूर्ण जगत् **संभवति**- उत्पन्न होता है।

**व्याख्या**

**अभिन्ननिमित्तोपादानकारण ब्रह्म**

जैसे मकड़ी जाले को बनाती है और उसे ग्रस लेती है, वैसे ही परमात्मा जगत् को बनाते हैं और उसे समाप्त कर देते हैं। जैसे मकड़ी अन्य किसी निमित्तकारण की अपेक्षा न करके जाले को बनाती है, वैसे ही परमात्मा अन्य किसी निमित्तकारण की अपेक्षा न करके जगत् को बनाते हैं। इस प्रकार जैसे जाले का अभिन्ननिमित्तोपादन कारण मकड़ी होती है, वैसे ही जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादन कारण परमात्मा होते हैं। जैसे मकड़ी अन्य निमित्त की अपेक्षा न करके अपने शरीर से ही जाला बनाती है वैसे ही परमात्मा अन्य निमित्त की अपेक्षा न करके अपने (सूक्ष्मचेतनाचेतनरूप) शरीर से ही जगत् को उत्पन्न करते हैं। वेदान्त सिद्धान्त में ब्रह्म सविशेष (चेतनाचेतन से विशिष्ट) ही माना जाता है। चेतनाचेतन उसके आश्रित रहने वाले अपृथक्सिद्ध विशेषण होते हैं।

**द्वैतमत**

ऊर्णनाभि दृष्टान्त से ब्रह्म को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण कहना उचित नहीं क्योंकि उपादान के नाश से कार्य का नाश होता है, किन्तु मकड़ी का नाश होने पर जाले का नाश नहीं होता, इससे सिद्ध होता है कि मकड़ी उसका उपादानकारण नहीं है, केवल निमित्त कारण है।

**सिद्धान्तमत**

प्रस्तुत शंका उचित नहीं क्योंकि उपादानकारण और निमित्तकारण के भेद के स्थल घट, पटादि हैं, उनके उपादान और निमित्त भिन्न होते हैं। जैसे घट का उपादान मिट्टी और निमित्त कुलाल होता है तथा पट का उपादान तन्तु और निमित्त जुलाहा होता है, वैसे जाले का उपादान और निमित्त भिन्न नहीं होते अपितु एक मकड़ी ही दोनों कारण है। यदि कहना चाहें कि उपादानकारण मकड़ी का शरीर है और निमित्तकारण चेतन मकड़ी तो यह भी संभव नहीं क्योंकि मिट्टी और कुलाल आदि के समान यहाँ भेद संभव नहीं। जैसे मिट्टी कुलाल से पृथक है, वैसे मकड़ी के शरीर का निमित्तकारण चेतन से पृथक् रहना संभव नहीं, मकड़ी का शरीर तो चेतन से अपृथक्सिद्ध है अतः यह अभिन्ननिमित्तोपादान कारण का दृष्टान्त है।

मिट्टी अचेतन होने से स्वयं घटरूप में परिणत नहीं हो सकती, अतः वह अपने से भिन्न निमित्तकारण की अपेक्षा करती है किन्तु ब्रह्म चेतन है, इस कारण वह स्वयं जगत्रूप में परिणत हो जाता है अतः अपने से भिन्न निमित्तकारण की अपेक्षा नहीं करता। कुलाल असमर्थ होने से स्वयं घटरूप में परिणत नहीं हो सकता अतः वह घट को उत्पन्न करने के लिए मिट्टी की अपेक्षा करता है। परमात्मा सर्वसमर्थ होने से स्वयं जगत्रूप में परिणत हो जाता है, अतः वह अपने से भिन्न उपादान की अपेक्षा नहीं करता, इसे समझाने के लिए श्रुति ऊंर्णनाभि दृष्टान्त को कहती है।

## ब्रह्मस्वरूप का निर्विकारत्व

जैसे मकड़ी से जाला उत्पन्न होने पर मकड़ी में कोई विकार नहीं होता, वैसे ही ब्रह्म से जगत् उत्पन्न होने पर ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता। पृथ्वी में विविध प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, यहाँ औषधियाँ कार्य हैं और उनका उपादानकारण पृथ्वी[1] है। जैसे पृथ्वी अविकृत रहकर परस्पर विलक्षण नाना प्रकार की औषधियों का उपादान कारण होती है, वैसे ही परमात्मा अविकृत रहकर परस्पर विलक्षण नाना प्रकार के पदार्थों के उपादान कारण होते हैं।

## ब्रह्म से विलक्षण जगत्

जैसे जीवित पुरुष(शरीरविशिष्ट जीवात्मा) से उसकी अपेक्षा विलक्षण केश[2], लोम[3] और नखादि कार्य उत्पन्न होते हैं, वैसे ही परमात्मा से विलक्षण विविध प्रकार का जगत् उत्पन्न होता है।

जैसे केश आदि की उत्पत्ति होने पर भी पुरुष में विकार नहीं होता, वैसे ही जगत् की उत्पत्ति होने पर भी परमात्मा में विकार नहीं होता। इस विवरण से सिद्ध होता है कि अन्य निमित्त की अपेक्षा न करने वाले, उपादेय से विलक्षण, निर्विकार परमात्मा से परस्पर विलक्षण चेतनाऽचेतनात्मक जगत् उत्पन्न होता है।

यहाँ यह अवश्य ज्ञातव्य है कि जगत् उत्पन्न होने पर परमात्मस्वरूप में कोई विकार(परिणाम) नहीं होता किन्तु उसके विशेषण चेतनाचेतन में विकार होते हैं, वे उनके द्वारा परमात्मस्वरूप के विकार माने जाते हैं। प्रकृति का महदादिरूपों में स्वरूपतः विकार होता है। जीव का स्वरूपतः विकार न होने पर भी उसके धर्मभूत ज्ञान का विकार होता है। चेतनाचेतन के ये विकार उनके द्वारा परमात्मा के विकार कहे जाते हैं।

---

**टिप्पणी**- 1. यहाँ बीजसहित पृथ्वी को उपादानकारण जानना चाहिए।

2. शिर के बालों को केश कहते हैं।

3. अन्य स्थान के बालों को लोम कहते हैं।

*अब ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति कही जाती है-*

**तपसा चीयते[1] ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।**
**अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।।9।।**

**अन्वय**

ब्रह्म तपसा चीयते, ततः अन्नम् अभिजायते। अन्नात् प्राणः मनः सत्यं लोकाः च कर्मसु अमृतम्।

**अर्थ**

**ब्रह्म**- ब्रह्म **तपसा**- संकल्प से (सृष्टि करने के लिए) **चीयते**- उन्मुख (तैयार) होता है। **ततः**-उस ब्रह्म से **अन्नम्**- अव्याकृत **अभिजायते**- उत्पन्न होता है। **अन्नात्**- अव्याकृत से **प्राणः**- प्राण **मनः**- मन **सत्यम्**- भोक्ता चेतन **लोकाः**- स्वर्गादि लोक **च**- और **कर्मसु**- कर्मों में **अमृतम्[2]**- मोक्ष के साधक कर्म उत्पन्न होते हैं।

**व्याख्या**

**ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति**

परमात्मा का ज्ञानरूप तप है- **यस्य ज्ञानमयं तपः** (मु.उ.1.1.10) इस श्रुति के अनुसार तप का अर्थ है- संकल्पात्मक ज्ञान। परमात्मा **बहु स्याम्** (छां.उ.6.2.3) ऐसे संकल्प से सृष्टि करने के लिए उन्मुख होता है। उससे अन्न उत्पन्न होता है। यहाँ अन्न[3] का अर्थ है-सूक्ष्मचेतनाऽचेतन अर्थात् नामरूपविभाग के अभाव वाला भोक्ता तथा भोग्य का संघातरूप अव्याकृत । वह प्रलयकाल में परमात्मा में एकीभूत (अविभक्त) होकर स्थित रहता है, नित्य है अतः उसकी उत्पत्ति का अर्थ है- अभिव्यक्ति।

---

**टिप्पणी**- 1. उपचीयते(प्रका.)। वर्धते सृष्ट्युन्मुखं भवति इत्यर्थः। अंकुरजननोन्मुखं बीजमिवोत्फुल्लतां गतमिव भवति(आ.भा.)।

2. मोक्षप्रदं कर्म(प्रदी.)।

3. जो खाया(भोगा) जाता है, उसे अन्न कहते हैं-अद्यते इति अन्नम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार अन्न का अर्थ है-भोग्य प्रकृति और जो खाता है-अत्ति इति अन्नम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार अन्न का अर्थ है-भोक्ता जीव।

नामरूपविभाग के योग्य (स्थूल) चेतनाऽचेतनात्मक जगत्रूप होने के लिए सूक्ष्मचेतनाऽचेतनरूप अव्याकृत परमात्मा से अभिव्यक्त होता है, यह प्रस्तुत वाक्य का अर्थ है। उससे मुख्य प्राण, मन, भोक्ता जीव और स्वर्गादि लोक उत्पन्न होते हैं। कर्मों के अन्तर्गत जो कर्म अन्तःकरण की निर्मलता के द्वारा अमृत के जनक हैं, उनका परमात्मा ने उपदेश किया, यह भाव है।

*किसी भी कार्य का निर्माता उसे जानने वाला होता है किन्तु विविध विलक्षण जगत् का निर्माता ईश्वर सर्वज्ञ है, इसे कहते हुए पूर्व मन्त्र में आए तप शब्द के अर्थ को कहते हैं -*

**यस्सर्वज्ञस्सर्वविद्[1] यस्य ज्ञानमयं तपः।**
**तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते॥10॥**

**॥ इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः ॥**

**अन्वय**

यः सर्वज्ञ सर्ववित्। यस्य तपः ज्ञानमयम्, तस्मात् एतत् ब्रह्म च नामरूपम् अन्नं जायते।

**अर्थ**

**यः**-जो **सर्वज्ञः**- सब को स्वरूपतः जानने वाला (और) **सर्ववित्**- सब को प्रकारतः जानने वाला है। **यस्य**- जिस का **तपः**- तप **ज्ञानमयम्**- संकल्प ही है। **तस्मात्**- संकल्प से सृष्टि करने के लिए उन्मुख ब्रह्म से **एतत्**- यह **ब्रह्म**- अव्याकृत नाम वाला अन्न **च**- और **नामरूपम्**- नामरूपवाला **अन्नम्**- भोक्ता तथा भोग्यरूप जगत् **जायते**- उत्पन्न होता है।

**व्याख्या**

जगत्कारण परमात्मा सर्वज्ञ है और सर्ववित् भी। सर्वज्ञ का अर्थ है- सबको सामान्यरूप से (स्वरूपतः) जानने वाला और सर्ववित् का अर्थ है- सबको विशेषरूप से जानने वाला अर्थात् उनमें विद्यमान सभी

---

**टिप्पणी**- 1. 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इत्यपि पाठो दृश्यते।

प्रकारों (विशेषताओं) को जानने वाला। **तपसा चीयते ब्रह्म** (मु.उ.1.1. 9) इस प्रकार पूर्व मन्त्र में पठित तप शब्द का यहाँ ज्ञानमयम् इस प्रकार संकल्प अर्थ किया गया है। परमात्मा को सृष्टि करने के लिए संकल्प से अतिरिक्त किसी की आवश्यकता नहीं होती। तस्मात् पद से संकल्प से सृष्टि कार्य के लिए उन्मुख ब्रह्म का ग्रहण होता है। पूर्व मन्त्र में उससे अन्न (अव्याकृत) की उत्पत्ति कही थी, अतः यहाँ ब्रह्म पद का वही अर्थ है। सर्वज्ञ ब्रह्म से साक्षात् नामरूपविभाग के अभाव वाला चेतनाऽचेतन होता है और इसके द्वारा ब्रह्म से नामरूपविभाग वाला चेतनाऽचेतनरूप कार्य जगत् उत्पन्न होता है।

## प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः

**हरिः ओम्। तदेतत् सत्यम्।**
**मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि।**
**तान्याचरथ नियतं सत्यकामाः एष वः पन्थास्सुकृतस्य लोके॥1॥**

### अन्वय

तत् एतत् सत्यम्। कवयः मन्त्रेषु यानि कर्माणि अपश्यन्। बहुधा त्रेतायां तानि संततानि। सत्यकामाः तानि नियतम् आचरथ। सुकृतस्य लोके वः एषः पन्थाः।

### अर्थ

**तत्**- परा विद्या के द्वारा प्राप्य **एतत्**- सर्वज्ञ, सर्ववित् ब्रह्म **सत्यम्**-नित्य है। **कवयः**- अतीन्द्रिय अर्थ का साक्षात्कार करने में समर्थ महर्षियों ने **मन्त्रेषु**- वेदमन्त्रों में **यानि**- जिन **कर्माणि**-कर्मों को **अपश्यन्**- देखा। **बहुधा**- अधिकारी, मन्त्र, और फल के भेद से बहुत प्रकार वाले (तथा) **त्रेतायाम्**[1]- गार्हपत्यादि तीन अग्नियों में किए जाने वाले **तानि**- वे कर्म **संततानि**- जीवनपर्यन्त कर्तव्यत्वेन विहित होते हैं। **सत्यकामाः**[2]-

---

**टिप्पणी**- 1. अग्नित्रयमिदं त्रेता इति निघण्टुः।

2. स्वतः सत्यं परं ब्रह्मैव कामयमानाः(प्रका.)।

परब्रह्म की ही कामना करने वाले तुम सब **तानि**- उन कर्मों का **नियतम्**- अवश्य **आचरथ**[1]- आचरण करो। **सुकृतस्य**- अनुष्ठित ब्रह्मज्ञान के **लोके**- फल मोक्ष में **वः**:- तुम्हारे लिए **एषः**- यह **पन्थाः**- मार्ग है।

**व्याख्या**

**कर्मों की अवश्यकर्तव्यता**

पूर्व में पराविद्या के द्वारा प्राप्यरूप से वर्णित सर्वज्ञ, सर्ववित् ब्रह्म सत्य है, यहाँ सत्य का अर्थ है- नित्य अर्थात् उत्पत्ति आदि षड् भावविकारों से रहित। 1. उत्पत्ति 2. उत्पन्नावस्थारूप अस्तित्व 3. परिणाम, 4. वृद्धि 5. क्षीणता और 6. विनाश, ये अचेतनभाव पदार्थों में रहने वाले विकार हैं- **षड्भावविकाराः भवन्तीति वार्ष्यायणिः। जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति॥** (नि.1. 1.3) ये ब्रह्म में नहीं होते, इसलिए वह सत्य कहा जाता है। अतीन्द्रिय विषयों का साक्षात्कार करने में समर्थ महर्षियों ने स्वसाक्षात्कृत वेदमन्त्रों में जिन कर्मों को देखा, उनके अधिकारी मनुष्य भिन्न-भिन्न होते हैं, उनमें प्रयुक्त होने वाले मन्त्र भिन्न होते हैं और उनसे प्राप्त होने वाले फल भी भिन्न होते हैं। इस रीति से बहुत प्रकार वाले कर्म गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियों से साध्य होते हैं, वे आजीवन कर्तव्यरूप से विहित होते हैं। परब्रह्म को ही फलरूप से चाहने वाले तुम सब फलान्तर की इच्छा से रहित होकर उन कर्मों का अवश्य अनुष्ठान करो। ब्रह्मज्ञान का फल मोक्ष की प्राप्ति में तुम्हारे लिए कर्मानुष्ठान ही मार्ग है, वह अन्तःकरण को निर्मल करके ब्रह्मविद्या की निष्पत्ति के द्वारा मोक्ष में हेतु बनता है, इसलिए मुमुक्षु को ब्रह्मविद्या के अङ्गरूप से स्ववर्णाश्रमोचित नित्य नैमित्तिक कर्म[2] अवश्य करने चाहिए।

*ऊपर फलेच्छा से रहित होकर किए जाने वाले कर्मों का*

---

**टिप्पणी**- 1. आचरथेति बहुवचनोक्त्या प्रष्टा शौनक उपलक्षणमिति सूचितम्(उ.ख.)।
2. इन्हें विस्तार से जानने के लिए ईशावास्योपनिषत् के द्वितीय मन्त्र की तत्त्वविवेचनी व्याख्या को देखना चाहिए।

*ब्रह्मविद्या के अङ्गरूप से विधान किया गया। अब नित्य अग्निहोत्रहोम के उचित काल और नियत आधार का विधान करते हैं-*

**यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने।**
**तदाऽऽज्यभागावन्तरेण आहुतीः प्रतिपादयेत्[1] ॥2॥**

**अन्वय**

हव्यवाहने समिद्धे हि यदा अर्चिः लेलायते। तदा आज्यभागौ अन्तरेण आहुतीः प्रतिपादयेत्।

**अर्थ**

**हव्यवाहने**- देवताओं को हविष पहुँचाने वाली अग्नि **समिद्धे**- सम्यक् प्रज्वलित होने पर **हि**- ही **यदा**-जब **अर्चिः**- ज्वाला **लेलायते**- लपलपाती (निकलती) है। **तदा**- तब **आज्यभागौ**- आज्यभाग के **अन्तरेण**- मध्य में **आहुतीः**- आहुतियाँ **प्रतिपादयेत्[2]**- डालनी चाहिए।

**व्याख्या**

**नित्य अग्निहोत्र**

समिधा के द्वारा अग्नि सम्यक् प्रज्वलित करके जब ज्वाला निकलने लगे तब धूमरहित उस अग्नि में आहुतियाँ डालनी चाहिए। आहवनीय अग्नि के दक्षिणी व उत्तरी किनारों में क्रमशः 'अग्नये स्वाहा' और 'सोमाय स्वाहा' इन मन्त्रों का उच्चारण करके आज्यभाग (घृत की आहुतियाँ) अर्पित किये जाते हैं। उनके (आहवनीय अग्नि के दक्षिणी और उत्तरी किनारों के) मध्य स्थान में अन्य आहुतियाँ डाली जाती हैं। उस मध्य स्थान को आवाप स्थान कहते हैं। अग्निहोत्र करने वालों को आज्यभाग के स्थान को छोड़ कर आवापस्थान में आहुतियाँ देनी चाहिए।

*फलेच्छापूर्वक किए जाने वाले कर्म विधिवत् अनुष्ठित न होने पर फल के जनक नहीं होते अपितु प्रत्यवाय के ही जनक होते हैं, इसे कहते हैं-*

---

**टिप्पणी**- 1. 'प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम्' इति पाठान्तरः।
2. आज्यभागाख्यहोमौ पार्श्वयोः कृत्वा मध्ये होमाः कार्या इत्यर्थः (उ.ख.)।

**यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्य[1]मनाग्रयणमतिथिवर्जितं च।**
**अहुतमवैश्वदेवमविधिना[2]हुतमासप्तमान् तस्य लोकान् हिनस्ति।।3।।**

### अन्वय

यस्य अग्निहोत्रम् अदर्शम् अपौर्णमासम् अचातुर्मास्यम् अनाग्रयणम् अतिथिवर्जितम् अहुतम् अवैश्वदेवं च अविधिना हुतम्। तस्य आसप्तमान् लोकान् हिनस्ति।

### अर्थ

**यस्य**- जिसका **अग्निहोत्रम्**- अग्निहोत्र कर्म **अदर्शम्**- दर्श से रहित **अपौर्णमासम्**- पौर्णमास से रहित **अचातुर्मास्यम्**- चातुर्मास्य से रहित **अनाग्रयणम्**- आग्रयण से रहित **अतिथिवर्जितम्**- अतिथिसत्कार से रहित **अहुतम्**- समय पर न किया गया **अवैश्वदेवम्**- वैश्वदेव से रहित **च**- और **अविधिना**- अविधिपूर्वक **हुतम्**- किया गया हो। **तस्य**- उस अग्निहोत्री का अग्निहोत्र कर्म **आसप्तमान्**- सत्यलोक पर्यन्त **लोकान्**- लोकों को **हिनस्ति**- नष्ट करता है।

### व्याख्या

### अविधिवत् अनुष्ठित कर्म से हानि

अमावस्या में अनुष्ठीयमान यागविशेष दर्श एवं पूर्णमासी में किया जाने वाला यागविशेष पौर्णमास कहलाता है। चार मास में सम्पन्न होने वाला यागविशेष चातुर्मास्य है। नवीन अन्न को स्वीकार करने के लिए उसी (नवीन अन्न) से की जाने वाली इष्टि आग्रयण कहलाती है। अतिथिसत्कार भी अनिवार्य कर्म है। अग्निहोत्र यथासमय किया जाना चाहिए। बलिवैश्वदेव कर्म पञ्चमहायज्ञ के अन्तर्गत है। कर्म का विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए। अग्निहोत्री को दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयण, अतिथिसत्कार और वैश्वदेव ये सभी कर्म करने चाहिए तथा अग्निहोत्र को विहितकाल में और विधिपूर्वक करना चाहिए।

---

**टिप्पणी**- 1. केषुचित् संस्करणेषु 'अचातुर्मास्यम्' इति न दृष्टः।
2. कुत्रचित् 'अवैश्वदेवमश्रद्धयाऽविधिना इत्यपि पाठः दृश्यते।

ऐसा न करने पर अग्निहोत्री का अग्निहोत्रकर्म पुण्य से प्राप्त किए जाने वाले भू, भुवः, स्वः, महः, जन, तप और सत्य इन सातों लोकों को नष्ट कर देता है अर्थात् वे लोक उसे प्राप्त नहीं होते अथवा उस अग्निहोत्री का होम सात पीढ़ियों का नाश करता है। अग्निहोत्री के पूर्व की पिता, पितामह और प्रपितामह तथा उत्तर की पुत्र, पौत्र प्रपौत्र, इनके साथ अग्निहोत्री को लेकर सात पीढ़ियाँ होती है। पिता आदि के नाश का अर्थ है- पिण्डादि से उनकी तृप्ति करने में असमर्थ होना और पुत्र आदि के नाश का अर्थ है- उनका पालन करने में असमर्थ होना।

गृहस्थाश्रमी को अग्निहोत्रादि कर्म अवश्य करने चाहिए, इनसे निष्काम अधिकारी को अन्तःकरण की निर्मलता तथा सकाम को अभीष्ट फल प्राप्त होता है। निष्काम कर्मी के अनुष्ठेय कर्मों में किसी अङ्ग की विकलता होने पर भी वे उसके प्रत्यवाय के जनक नहीं होते किन्तु सकाम कर्मी के प्रत्यवाय के जनक होते हैं।

*द्वितीय मन्त्र में लपलपाती ज्वाला वाली अग्नि में होम करने को कहा था, अब ज्वालाओं को कहते हैं-*

**काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।**
**स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची[1] च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः॥4॥**

**अन्वय**

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता च या सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी च विश्वरुची देवी इति लेलायमानाः सप्त जिह्वाः।

**अर्थ**

**काली**- काले रंग वाली **कराली[2]**- विकराल(उग्र) **च**- और **मनोजवा**- मन के समान अत्यन्त चलायमान **च**- और **सुलोहिता**- सुन्दर लाल रंग वाली **च**- और **या**- जो **सुधुम्रवर्णा**- सुन्दर धुएं के समान रंग वाली **स्फुलिङ्गिनी**- चिनगारियों वाली **च**- और **विश्वरुची**

---

**टिप्पणी**- 1. 'विश्वरूपी' इति पाठान्तरः।

2. जिससे आग लगने का भय हो, वह कराली कहलाती है।

**देवी**- विश्वरुची (सब ओर प्रकाशमान) देवी **इति**- ये **लेलायमाना:**- लपलपाती हुई **सप्त**- सात (अग्नि की) **जिह्वा:**- जिह्वाएं हैं।

**व्याख्या**

**अग्नि की सात जिह्वा**

अग्निदेवता की काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरुची देवी ये सात जिह्वाएं हैं। इनसे वे यजमान के द्वारा समर्पित आहुति को ग्रहण करते हैं अतः ज्वाला से युक्त अग्नि में ही होम करना चाहिए, धूमयुक्त अग्नि में होम नहीं करना चाहिए।

*अब अग्निहोत्र से बुभुक्षु अधिकारी को चतुर्मुख के लोक की प्राप्ति कही जाती है-*

**एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्।**
**तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः॥5॥**

**अन्वय**

यः च भ्राजमानेषु एतेषु हि यथाकालं आददायन् चरते। तम् एताः आहुतयः सूर्यस्य रश्मयः नयन्ति, यत्र देवानां पतिः एकः अधिवासः।

**अर्थ**

**यः**- जो अग्निहोत्री **च**- निश्चितरूप से **भ्राजमानेषु**- दीप्तिमान **एतेषु**- ज्वालाओं में **हि**- ही **यथाकालम्**- यथासमय (हविष् को) **आददायन्**- लेकर (अग्निहोत्र होम का) **चरते**- अनुष्ठान करता है, **तम्**- उस अग्निहोत्री को **एताः**- ये **आहुतयः**- आहुतियाँ **सूर्यस्य**- सूर्य की **रश्मयः**[1]- किरणों द्वारा (उस लोक में) **नयन्ति**- ले जाती हैं। **यत्र**- जहाँ **देवानाम्**- देवताओं के **पतिः**- स्वामी **एकः**- एक **अधिवासः**[2]- ब्रह्मा जी निवास करते हैं।

---

**टिप्पणी**-1. अत्र तृतीयार्थे प्रथमा।

2. अधिवसतीति अधिवासः चतुर्मुखः।

**व्याख्या**

**काम्यकर्मी को सत्यलोक की प्राप्ति**

जो काल का अतिक्रमण न करके विधिपूर्वक अग्निहोत्र होम करता है, उसे होम की आहुतियाँ सूर्य की रश्मियों द्वारा चतुर्मुख ब्रह्मा के लोक में ले जाती हैं। अग्नि में प्रक्षिप्त आहुतियों का सूक्ष्म अंश सूर्य की रश्मि से मिलकर रश्मिरूप हो जाता है, इस कारण आहुतियाँ सूर्य की रश्मियाँ होकर- **सूर्यस्य रश्मयः** इस प्रकार यहाँ प्रथमा विभक्ति प्रयुक्त है।

*आहुतियाँ यजमान की स्तुति करते हुए उसे चतुर्मुख के लोक में ले जाती हैं, इसे कहते हैं-*

**एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।**
**प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्यः एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः॥6॥**

**अन्वय**

सूर्यस्य रश्मिभिः सुवर्चसः आहुतयः एहि एहि सुकृतः एषः पुण्यः ब्रह्मलोकः वः इति प्रियां वाचम् अभिवदन्त्यः अर्चयन्त्यः तं यजमानं वहन्ति।

**अर्थ**

**सूर्यस्य**- सूर्य की **रश्मिभिः**- रश्मियों से संयुक्त **सुवर्चसः**- सुन्दर कान्ति वाली **आहुतयः**- आहुतियाँ **एहि**- आइए **एहि**- आइए। **सुकृतः**- उत्तम अग्निहोत्र कर्म से प्राप्त **एषः**- यह **पुण्यः**- पवित्र **ब्रह्मलोकः**- ब्रह्मा का लोक **वः**- तुम्हारा है। **इति**- इस प्रकार **प्रियाम्**- प्रिय **वाचम्**- वाणी को **अभिवदन्त्यः**- बोलते हुए (और पुष्पमाला आदि स) **अर्चयन्त्यः**- सत्कार करते हुए **तम्**- उस **यजमानम्**- यजमान को **वहन्ति**- ले जाती हैं।

*विनाशी फल का जनक होने से चतुर्मुख के लोक की प्राप्ति के साधन कर्म की भी निन्दा की जाती है-*

**प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।**
**एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढाः जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति॥7॥**

**अन्वय**

अष्टादशोक्तम् अवरं कर्म येषु, यज्ञरूपाः एते अदृढाः प्लवाः हि। एतत् श्रेयः ये अभिनन्दन्ति, ते मूढाः पुनः अपि जरामृत्युम् एव यन्ति।

**अर्थ**

**अष्टादशोक्तम्**- 16 याज्ञिक, यजमान और उसकी पत्नी इस प्रकार 18 कर्ता के द्वारा साध्य कहा गया **अवरम्**- तुच्छ(फलेच्छा से क्रियमाण) **कर्म**- कर्म **येषु**- जिन यजमानों में है, **यज्ञरूपाः**- यज्ञ की प्रधानता वाले **एते**- ये यजमान (संसारसागर को पार करने में) **अदृढाः**- जीर्ण **प्लवाः**- नौका के समान असमर्थ **हि**- ही हैं। **एतत्**- फलेच्छा से किया जाने वाला यह कर्म **श्रेयः**- कल्याण का साधन है, ऐसा मानकर **ये**- जो **अभिनन्दन्ति**- हर्षित होते हैं। **ते**- वे **मूढाः**- मूढ मनुष्य **पुनः**- फिर **अपि**- भी **जरामृत्युम्**- जरा और मृत्यु को **एव**- ही **यन्ति**- प्राप्त करते रहते हैं।

**व्याख्या**

**काम्य कर्मी की दुर्गति**

16 ऋत्विक और यजमान दम्पति इन 18 कर्ता से साध्य फलेच्छापूर्वक अनुष्ठीयमान कर्म जिन यजमानों के होते हैं। यज्ञकर्म की प्रधानता वाले वे यजमान जीर्ण नौका के समान संसारसागर को पार करने में असमर्थ होते हैं अथवा **अष्टादशोक्तम्** 18 स्मृतियों में कहे गये (फलेच्छा से अनुष्ठीयमान) **कर्म**- स्मार्तकर्म **येषु**- जिन वैदिक कर्मो में **अवरम्**- अङ्ग होते हैं। **यज्ञरूपाः**- वैदिक यज्ञरूप **एते**- ये **प्लवाः**- नौकाएं संसार सागर को पार करने में **अदृढ़ा**- असमर्थ **हि**- ही हैं। स्नान तथा तिलकधारण आदि कर्म स्मृतिविहित होने से स्मार्त हैं। ये फलेच्छा से किए जाने वाले यज्ञादि वैदिक कर्मों के भी अङ्ग हैं, वे यज्ञरूप नौकाएं संसार सागर को पार करने में समर्थ नहीं होतीं, उनको

कल्याण का साधन मानकर जो हर्षित होते हैं, वे पुनः संसार में जन्म लेकर जरावस्था और मृत्यु को ही प्राप्त करते रहते हैं। **आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन** (गी.8.16) इस प्रकार गीता में कर्मफलभोग के पश्चात् ब्रह्मा के लोकपर्यन्त सभी लोकों से आगमन कहा है। इस प्रकार काम्यकर्म करने वालों का मोक्ष कभी नहीं होता, वे इधर-उधर भटकते ही रहते हैं।

**[1]अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।**
**जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढाः अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः॥8॥**

### अन्वय

अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः मूढाः जङ्घन्यमानाः परियन्ति, यथा अन्धेन एव नीयमानाः अन्धाः।

### अर्थ

**अविद्यायाम्**- काम्य कर्म के **अन्तरे**- मध्य में **वर्तमानाः**- वर्तमान **स्वयम्**- स्वयं को **धीराः**- बड़ा बुद्धिमान् (और) **पण्डितम्मन्यमानाः**- पण्डित[2] मानने वाले **मूढाः**- अविवेकी मनुष्य **जङ्घन्यमानाः**- जन्म, जरा तथा रोगादि अनेक उत्पातों से व्याकुल होकर **परियन्ति**- एक योनि से दूसरी योनि में भटकते रहते हैं। **यथा**- जैसे **अन्धेन**- अन्धे के द्वारा **एव**- ही **नीयमानाः**- ले जाये जाने वाले **अन्धाः**- अन्धे मनुष्य इधर-उधर भटकते रहते हैं।

### व्याख्या

जो काम्यकर्मरूप अविद्या के अनुष्ठान में निरत रहने वाले तथा स्वयं को बड़ा बुद्धिमान् और पण्डित मानने वाले मोहग्रस्त मनुष्य हैं। वे जन्म, जरा आदि अनेक प्रकार के उत्पातों से पीड़ित होकर उसी प्रकार

---

**टिप्पणी**- 1. यह मन्त्र कठोपनिषत् (1.2.5) में भी मिलता है, वहाँ 'जङ्घन्यमानाः' के स्थान पर 'दन्द्रम्यमाणाः' पाठ है।

2. सदसद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा, सा सञ्जाता अस्य इति पण्डितः।

एक योनि से दूसरी योनि में भटकते रहते हैं, जैसे नेत्रहीन के द्वारा ले जाये जाने वाले नेत्रहीन व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकते रहते हैं।

*अब उक्त विषय का ही विस्तार से वर्णन किया जाता है -*

**अविद्यायां बहुधा वर्तमानाः वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।**
**यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनाऽऽतुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥9॥**

**अन्वय**

अविद्यायां बहुधा वर्तमानाः बालाः वयं कृतार्थाः इति अभिमन्यन्ति यत् कर्मिणः रागात् न प्रवेदयन्ति, तेन क्षीणलोकाः आतुराः च्यवन्ते।

**अर्थ**

**अविद्यायाम्**- प्रकृतिमण्डल में **बहुधा**- बहुत प्रकार से अभिमानी होकर **वर्तमानाः**- रहने वाले **बालाः**- मूर्ख मनुष्य **वयम्**- हम **कृतार्थाः**- कृतार्थ हैं, **इति**- ऐसा **अभिमन्यन्ति**- अभिमान करते हैं। **यत्**- क्योंकि **कर्मिणः**- सकाम कर्म करने वाले **रागात्**- राग के कारण (तत्त्व को) **न**- नहीं **प्रवेदयन्ति**- जानते हैं, **तेन**- उस कारण **क्षीणलोकाः**[1]-क्षीण हुए कर्मफल वाले वे **आतुराः**- व्याकुल होकर (ऊपर के लोक से) **च्यवन्ते**- नीचे के लोक में गिर जाते हैं।

**व्याख्या**

यहाँ काम्यकर्मात्मिका अविद्या से प्राप्त होने वाला प्रकृतिमण्डल अविद्याशब्द से कहा गया है। प्रकृति मण्डल में 'मैं देवता हूँ' 'मैं मनुष्य हूँ ' 'मैं विद्वान् हूँ ' 'मैं श्रेष्ठ हूँ' इत्यादि रीति में बहुत प्रकार के अभिमान से युक्त होकर मूर्ख मनुष्य विनाशी भोगों को भोगकर हम ही कृतार्थ हैं, ऐसा भी अभिमान करते हैं। वे कर्मों के फल स्वर्ग, स्त्री और पुत्रादि में राग होने के कारण परमात्मतत्त्व और उसकी प्राप्ति के

---

**टिप्पणी** - 1 क्षीणकर्मफलाः (शां.भा.)।

साधन को नहीं जानते हैं, इस कारण वे कर्मी पुण्यलोक में जाकर भोग से कर्म का फल क्षीण होने पर व्यथित होकर नीचे के लोक में आ जाते हैं।

**इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।**
**नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वा इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति[1] ॥10॥**

**अन्वय**

इष्टापूर्तं वरिष्ठं मन्यमानाः प्रमूढाः अन्यत् श्रेयः न वेदयन्ते। ते सुकृते नाकस्य पृष्ठे अनुभूत्वा इमं लोकं वा हीनतरं विशन्ति।

**अर्थ**

**इष्टापूर्तम्[2]**- श्रौत-स्मार्त कर्मों को **वरिष्ठम्**- श्रेष्ठ **मन्यमानाः**-मानने वाले **प्रमूढाः**- अत्यन्त मूर्ख लोग **अन्यत्**- दूसरे **श्रेयः**- कल्याण के साधन को **न**- नहीं **वेदयन्ते**- जानते हैं। **ते**- वे **सुकृते**- पुण्य से प्राप्त **नाकस्य**- स्वर्ग के **पृष्ठे**- (सर्वसुविधासम्पन्न) स्थान में पुण्यकर्म के फल को **अनुभूत्वा**- भोगकर **इमम्**- इस **लोकम्**- लोक में **वा**- अथवा **हीनतरम्**- इससे भी निम्न लोक में **विशन्ति**- प्रवेश करते हैं।

**व्याख्या**

यागादि श्रौत और खातादि स्मार्त कर्मों को ही सकल पुरुषार्थ की प्राप्ति का साधन मानने वाले अत्यन्त मोहयुक्त मनुष्य इससे भिन्न मोक्ष के साधन को नहीं जानते हैं, वे पुण्य कर्म से प्राप्त स्वर्ग के सुख को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर इस पृथ्वी लोक में अथवा इससे हीन नरक लोक में जाते हैं।

*काम्य कर्म करने वालों को पुनरावृत्तिवाले लोकों की प्राप्ति को कहकर अब ब्रह्मोपासकों को पुनरावृत्ति से रहित ब्रह्मलोक की प्राप्ति कही जाती है –*

---

**टिप्पणी**- **1.** वा विशन्ति इति स्थाने चाविशन्ति इति पाठः प्रतिपदार्थदीपिकासम्मतः।
**2.** इसका विवरण कठोपनिषत् (1.1.8) की तत्त्वविवेचनी व्याख्या में देखना चाहिए।

**तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः।**
**सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥11॥**

## अन्वय

शान्ताः ये विद्वांसः भैक्षचर्यां चरन्तः अरण्ये तपः श्रद्धे हि उपवसन्ति। ते विरजाः सूर्यद्वारेण प्रयान्ति यत्र हि सः अव्ययात्मा अमृतः पुरुषः।

## अर्थ

वेदान्त का श्रवण-मनन किए हुए **शान्ताः**- शम, दम से युक्त **ये**- जो **विद्वांसः**- ब्रह्मोपासक संन्यासी **भैक्षचर्याम्**- भिक्षावृत्ति का **चरन्तः**- आचरण करते हुए **अरण्ये**-अरण्य में रहकर **तपःश्रद्धे**- ब्रह्म का और उसमें अत्यन्त आदररूप श्रद्धा का **हि**- ही **उपवसन्ति**- सेवन करते हैं, **ते**- वे **विरजाः**- पापरहित होकर **सूर्यद्वारेण**[1]- सूर्यमण्डल का भेदन करके (वहाँ) **प्रयान्ति**- जाते हैं, **यत्र**- जहाँ **हि**- निश्चितरूप से **सः**- वह **अव्ययात्मा**- विकाररहित **अमृतः**- निरतिशय भोग्य **पुरुषः**- परमात्मा रहता है।

## व्याख्या

### ब्रह्मोपासकों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति

वेदान्त का श्रवण, मनन किए हुए शमादि से युक्त जो ब्रह्मोपासक संन्यासी जीवनधारणमात्र के लिए भिक्षावृत्ति करते हुए जंगल में रहकर ब्रह्म की और उसमें अत्यन्त आदररूप श्रद्धा की उपासना करते हैं अर्थात् अत्यन्त आदरपूर्वक ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे रागरहित उपासक चरमदेह का वियोग होने पर सूर्यमण्डल का भेदन करके अप्राकृत ब्रह्मलोक जाते हैं, जहाँ विकाररहित निरतिशय भोग्य परमात्मा रहते हैं। **ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते** (छां.उ.5.10.1) यहाँ पर भी श्रद्धा के साथ तप शब्द पढ़ा गया है और **ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते** (बृ.उ.6.2.15) यहाँ श्रद्धा के साथ सत्य शब्द पठित है

---

**टिप्पणी**- 1. सूर्यः द्वारं यस्मिन् मार्गे सः चार्चिरादिः, तेन मार्गेण तेन(सु.)।

तथा **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** (तै.उ.2.1.1) यहाँ सत्य पद का अर्थ ब्रह्म है अतः मुण्डक में सत्य के पर्याय तप शब्द का ब्रह्म अर्थ है, ऐसा जानना चाहिए।

*अब मुमुक्षु को ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए गुरु के समीप जाने का विधान किया जाता है-*

**परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।**
**तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥12॥**

**अन्वय**

कर्मचितान् लोकान् परीक्ष्य कृतेन अकृतः न अस्ति, ब्राह्मणः निर्वेदम् आयात्। सः तद्विज्ञानार्थं समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुम् एव अभिगच्छेत्।

**अर्थ**

**कर्मचितान्**- कर्म से प्राप्त होने वाले **लोकान्**- फलों की **परीक्ष्य**- वास्तविकता को जानकर (और) **कृतेन**- कर्म से **अकृतः**- ब्रह्म **न**- नहीं **अस्ति**- प्राप्त हो सकता(ऐसा समझकर) जो **ब्राह्मणः**- ब्राह्मण **निर्वेदम्**- वैराग्य को **आयात्**- प्राप्त हो **सः**- वह **तद्विज्ञानार्थम्**- ब्रह्म को जानने के लिए **समित्पाणिः**- हाथ में समिधा लेकर **श्रोत्रियम्**- श्रोत्रिय **ब्रह्मनिष्ठम्**- ब्रह्मनिष्ठ **गुरुम्**- गुरु के **एव**- ही **अभिगच्छेत्**- पास जाए।

**व्याख्या**

**ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए गुरु के समीप जाना**

विविध प्रकार के काम्य कर्म शास्त्रों में वर्णित हैं, उनसे यह मनुष्य लोक, पुत्र, पौत्र, धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा आदि तथा स्वर्ग फल प्राप्त होते हैं। आपाततः सुखरूप प्रतीत होने वाले ये सभी अनित्य हैं और अत्यन्त दुःखों को प्रदान करने वाले हैं, ऐसा सम्यक् विचार करके और अनित्य कर्म से अनन्त, स्थिर फल ब्रह्म प्राप्त नहीं हो सकता, ऐसा समझकर जिस मुमुक्षु को वैराग्य हो, वह ब्रह्म को जानने के लिए समित्पाणि होकर श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ही पास जाए।

**श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु**

वेदान्त के विद्वान् को श्रोत्रिय कहते हैं और ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले को ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं- **श्रोत्रियं वेदान्तवेदिनं ब्रह्मनिष्ठं साक्षात्कृतपरमपुरुषस्वरूपम्** (त.टी.1.1.1), **श्रोत्रियं श्रुतवेदान्तं ब्रह्मनिष्ठं ब्रह्मसाक्षात्कारवन्तम्** (श्रु.प्र.1.1.1.)।

यदि गुरु ब्रह्मनिष्ठ है, श्रोत्रिय नहीं तो वह शिष्य की शंकाओं का सम्यक् समाधान नहीं कर सकता और यदि श्रोत्रिय है किन्तु विषयान्तर में रुचि होने से अथवा अभ्यास (निदिध्यासन) की शिथिलता से ब्रह्मनिष्ठ नहीं हो सका तो वह भी लक्ष्य से विमुख है अतः श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ही पास जाने का श्रुति नियम करती है।

**समित्पाणिः**

राजा, देवता और गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए- **रिक्तपाणिस्तु नोपेयात राजानं दैवतं गुरुम्** ऐसा शास्त्र कहते हैं इसलिए जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्री लेकर ही गुरु के पास जाना चाहिए किन्तु जो वैराग्य से गृह आदि का त्याग करके ब्रह्मजिज्ञासा से आचार्य के पास जाता है, वह भला धन और धन से क्रीत वस्तु कैसे ला सकता है? अतः वन में सर्वसुलभ समिधा लेकर गुरु के पास जाने का विधान किया जाता है, होम के लिए उपयोगी काष्ठ को समिधा कहते हैं। गृहस्थ आचार्य होम करते हैं किन्तु आचार्य यदि संन्यासी हो तो वैराग्यवान् मुमुक्षु क्या करे? इसी कारण उपनिषद्भाष्यकार श्रीरङ्गरामानुजमुनि समित्पाणिः का अर्थ अरिक्तपाणिः करते हैं। खाली हाथ गुरु के पास जाने का निषेध है तो कम से कम दन्तधावन ही लेकर जाए। वस्तुतः गुरु को समर्पित करने के लिए श्रद्धासुमन ही सबसे बड़ी भेंट होती है।

**तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।**
**येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥13॥**

**॥ इति प्रथममुण्डके द्वितीयखण्डः ॥**

**अन्वय**

सः विद्वान् येन तत्त्वतः अक्षरं सत्यं पुरुषं वेद, तां ब्रह्मविद्यां शमान्विताय प्रशान्तचित्ताय सम्यक् उपसन्नाय तस्मै प्रोवाच।

**अर्थ**

**सः**- वह **विद्वान्**- श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ आचार्य **येन**- जिस विज्ञान (ब्रह्मविद्या) से **तत्त्वतः**- संशय, विपर्यय से रहित होकर **अक्षरम्**- स्वरूपतः विकार से रहित (तथा) **सत्यम्**- गुणतः विकार से रहित **पुरुषम्**- परमात्मा को **वेद**- जानता है। वह **ताम्**- उस **ब्रह्मविद्याम्**- ब्रह्मविद्या का **शमान्विताय**- शम से युक्त **प्रशान्तचित्ताय**- प्रशान्त अन्तःकरण वाले **सम्यक**- शास्त्रोक्त रीति से **उपसन्नाय**- सन्निधि में आए **तस्मै**- जिज्ञासु शिष्य को **प्रोवाच**- उपदेश करे।

**व्याख्या**

**ज्ञेय ब्रह्म**

यहाँ अक्षर का अर्थ है- स्वरूपतः विकार से रहित और सत्य का अर्थ गुणतः विकार से रहित। स्वरूप में होने वाला विकार स्वरूपतः विकार और गुणों में होने वाला विकार गुणतः विकार कहलाता है। अचेतन प्रकृति के स्वरूप का महद् आदि रूपों में परिणाम होता है अतः वह स्वरूपतः विकार वाली है और कूटस्थ चेतन आत्मा के स्वरूप में विकार न होने पर भी बद्धावस्था में उसके ज्ञान गुण का शोक-मोहादिरूपों में परिणाम होता है अतः वह गुणतः विकार वाला है। परमात्मा इन दोनों विकारों से रहित है। अक्षर और सत्य इन दो विशेषणों से चेतन-अचेतन से विलक्षण परमात्मा ज्ञेय कहा जाता है।

**योग्य शिष्य**

यहाँ शम शब्द से बाह्येन्द्रियों का निग्रह कहा जाता है और प्रशान्तचित्ताय से अन्तःकरण का निग्रह कहा जाता है- **शमः बाह्येन्द्रियनियमनरूपः प्रशान्तचित्तायेत्यन्तःकरणनियमनस्योक्ततया..** ... (श्रु.प्र.1.1.1.) इससे वेदान्तश्रवण के लिए उपयोगी एकाग्रता विवक्षित

है। शम से अन्वित और प्रशान्तचित्तवाला अन्तेवासी ही उपदेश के योग्य है, उसे ही उपदेश करना चाहिए अन्यथा उपदेश करना व्यर्थ होगा, केवल इतना ही नहीं अपितु इससे जन्य दोष से उपदेशक गुरु के जीवन में अनेक दुःखद समस्याएं उपस्थित होंगी।

## द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः

**हरिः ओम्। तदेतत् सत्यम्॥**
**यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।**
**तथाऽक्षरात् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥1॥**

### अन्वय

तत् सत्यम् एतत्। यथा सुदीप्तात् पावकात् सरूपाः सहस्रशः विस्फुलिङ्गाः प्रभवन्ते तथा सोम्य! अक्षरात् विविधाः भावाः प्रजायन्ते च तत्र एव अपियन्ति।

### अर्थ

**तत्**- पूर्व मुण्डक में कहा गया **सत्यम्**- सत्य ब्रह्म(अब) **एतत्**- जगत्कारण कहा जाता है। **यथा**- जैसे **सुदीप्तात्**- सम्यक् प्रज्वलित **पावकात्**- अग्नि से **सरूपाः**- उसके समान **सहस्रशः**- हजारों **विस्फुलिङ्गाः**- चिनगारियाँ **प्रभवन्ते**- उत्पन्न होती हैं। **तथा**- वैसे ही **सोम्य**- हे सोम्य! **अक्षरात्**- अक्षर ब्रह्म से उसके समान **विविधाः**- अनेक प्रकार वाले **भावाः**- कार्यवर्ग **प्रजायन्ते**- उत्पन्न होते हैं **च**- और **तत्र**- उसमें **एव**- ही **अपियन्ति**- लीन होते हैं।

### व्याख्या

### जगत्कारण ब्रह्म

**येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यम्** (मु.उ.1.2.13) इस प्रकार पूर्व मुण्डक में कथित इस सत्य, अक्षर ब्रह्म का अब जगत्कारणत्वेन निरूपण किया जाता है। जैसे सम्यक् प्रज्वलित अग्नि से उसके समान हजारों चिनगारियाँ

उत्पन्न होती हैं, वैसे ही हे सोम्य! सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म से उसके समान आकाश, वायु आदि तथा देवमनुष्यादि उत्पन्न होते हैं। अचेतन प्रकृति, चेतन आत्मा तथा ब्रह्म ये तीनों अक्षर पद के अर्थ होते हैं। चेतनसमष्टि से संयुक्त अचेतनप्रकृति तम में लीन होती है- **अक्षरं तमसि लीयते** (सु.उ.2)। यहाँ अक्षर का अर्थ है- चेतनसमष्टि से संयुक्त अचेतन और अक्षर की अपेक्षा सूक्ष्म अवस्था वाली वही प्रकृति तम कही जाती है। मरणधर्म से रहित अक्षर भोग्यपदार्थों को स्वीकार करने वाला है- **अमृताक्षरं हरः**[1] (श्वे.उ.1.10) यहाँ अक्षर पद का अर्थ जीवात्मा है। जिस विज्ञान से अक्षर ब्रह्म को जानता है- **येनाक्षरं पुरुषं वेद** (मु.उ.1.2.13) यहाँ अक्षर पद का अर्थ ब्रह्म है। प्रस्तुत उपनिषत् में **परा यया तदक्षरमधिगम्यते** (मु.उ.1.1.5) और **येनाक्षरं पुरुषं वेद** (मु.उ.1.2.13) **तथाऽक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः** इन स्थलों में अक्षरशब्द ब्रह्म का ही वाचक है। **यया तदक्षरम्** यहाँ **यत्तदद्रेश्यमग्राह्यम्** (मु.उ.1.1.6)इस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय का अविषय और कर्मेन्द्रिय का अविषय कहने से वह अचेतन अक्षर से भिन्न सिद्ध होता है क्योंकि अचेतन तो उनका विषय होता है। **अचक्षुश्श्रोत्रम्** (मु.उ.1.1.6) इस प्रकार चक्षुश्रोत्र से रहित कहने से वह चेतन जीवात्मा से भिन्न सिद्ध होता है क्योंकि जीवात्मा इनसे युक्त है, उसका ज्ञान इन्द्रियसापेक्ष है। दृष्टान्तरूप से कही गयी सुदीप्त अग्नि दाह्य काष्ठादि से विशिष्ट होती है, वैसे ही जगत्कारण ब्रह्म चेतनाऽचेतन से विशिष्ट होता है, उससे ही विविध प्रकार वाला कार्य जगत् उत्पन्न होता है। अग्रिम मन्त्र में **अक्षरात् परतः परः** (मु.उ..2.1.2) इस प्रकार अक्षररूप अचेतन से पर चेतन आत्मा तथा उससे भी पर ब्रह्म कहा गया है। इन्हीं सूक्ष्म चेतनाऽचेतन से विशिष्ट ब्रह्म जगत् का कारण होता है। जैसे मिट्टी ही घटरूप होती है वैसे ही सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म (अक्षर) विविध कार्यरूप (जगत्रूप) होता है। ब्रह्म के विशेषण चेतन-अचेतन का विविध कार्यरूप परिणाम होता है, विशेषणों के द्वारा वह ब्रह्म का परिणाम कहा जाता है, उनके द्वारा परिणाम होने से श्रुति में 'भावाः' इस

---

**टिप्पणी- 1.** भोग्यम् आत्मनो भोगार्थं हरतीति हरः जीवः (प्रका.)।

प्रकार बहुवचनान्त निर्देश संभव होता है। ब्रह्मस्वरूप अविकारी है, विकार तो उसके विशेषणों के होते हैं।

*अब जगत्कारण परमात्मा का स्वरूप कहा जाता है-*

**दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।**
**अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः॥2॥**

**अन्वय**

पुरुषः दिव्यः अमूर्तः हि, सः हि बाह्याभ्यन्तरः अप्राणः अमनाः अजः। शुभ्रः हि अक्षरात् परतः परः हि।

**अर्थ**

**पुरुषः**- परमात्मा **दिव्यः**- त्रिपादविभूति में विद्यमान (और) **अमूर्तः**- आकृतिरहित या अपरिच्छिन्न **हि**- ही है। **सः**- वह **हि**- ही (सभी वस्तुओं के) **बाह्याभ्यन्तरः**- बाहर और भीतर रहने वाला है। वह **अप्राणः**- प्राण के अधीन स्थिति वाला नहीं है (और) **अमनाः**- मन के अधीन ज्ञान वाला नहीं है। **अजः**- अजन्मा (और) **शुभ्रः**- निर्मल **हि**- ही है। (तथा वह) **अक्षरात्**- अचेतन प्रकृति से **परतः**- पर आत्मा से **परः**- पर **हि**- ही है।

**व्याख्या**

परमात्मा अप्राकृत लोक में विद्यमान है। आकृति वाले पदार्थ को मूर्त कहते हैं, वह सावयव होता है। परमात्मस्वरूप निरवयव है इसलिए अमूर्त है अथवा मूर्त का अर्थ है- परिच्छिन्न पदार्थ। परमात्मा अमूर्त है अर्थात् अपरिच्छिन्न है। वह सभी वस्तुओं को बाहर और भीतर से व्याप्त करके रहता है। वह अप्राण और अमन है अर्थात् उसकी स्थिति और ज्ञान प्राण के अधीन नहीं हैं। वह सभी दोषों से रहित है तथा अक्षर अचेतनप्रकृति से पर जो आत्मा है, उससे भी पर है। पूर्व मन्त्र में चेतनाऽचेतन से विशिष्ट परमात्मा कहा गया था, वह हमेशा इन विशेषणों से विशिष्ट ही रहता है। सृष्टि के पूर्व सूक्ष्मचेतनाऽचेतन से विशिष्ट

होकर कारण होता है और तत्पश्चात् स्थूलचेतनाऽचेतन से विशिष्ट होकर कार्य होता है। इस मन्त्र मे विशेष्य परमात्मस्वरूप का निरुपण किया गया है।

*विशेष्य ब्रह्मस्वरूप का निरुपण करके अब* ***अक्षरात् विविधाः सोम्य भावाः*** *(मु.उ.2.1.1) इस प्रकार प्रोक्त सृष्टि को विस्तार से कहते हैं -*

**एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।**
**खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥3॥**

**अन्वय**

एतस्मात् प्राणः मनः सर्वेन्द्रियाणि खं वायुः ज्योतिः आपः च विश्वस्य धारिणी पृथिवी जायते।

**अर्थ**

**एतस्मात्**- ब्रह्म से **प्राणः**- प्राण **मनः**- अन्तःकरण **सर्वेन्द्रियाणि**- सभी इन्द्रियाँ **खम्**- आकाश **वायुः**- वायु **ज्योतिः**- तेज **आपः**- जल **च**- और **विश्वस्य**- सब को **धारिणी**- धारण करने वाली **पृथिवी**- पृथ्वी **जायते**- उत्पन्न होती है।

**व्याख्या**

**प्राणादि की उत्पत्ति**

जीव की शरीर में स्थिति का हेतु जो प्राण है, वह परमात्मा से उत्पन्न होता है। मन, चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाक् आदि कर्मेन्द्रियाँ भी उसी से उत्पन्न होती हैं। ये सभी संसारी जीव के भोग के उपकरण हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और सभी प्राणियों को धारण करने वाली पृथ्वी भी परमात्मा से उत्पन्न होती है।

**शंका**

प्रस्तुत श्रुति के अनुसार ब्रह्म से आकाशादि भूतों की उत्पत्ति मानने पर **आकाशाद् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी**

(तै.उ.2.1.2) इस प्रकार आकाश से वायु की, वायु से तेज की, तेज से जल की और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति का प्रतिपादन करने वाली तैत्तिरीय श्रुति कैसे संगत होगी?

**समाधान**

**आकाशादिभूत और ब्रह्म में शरीर-आत्मभाव**

**यस्य आकाशश्शरीरम्** (बृ.उ.3.7.16) **यस्य वायुः शरीरम्** (बृ.उ.3.7.11.) **यस्य तेजश्शरीरम्** (बृ.उ.3.7.18) **यस्यापश्शरीरम्** (बृ.उ.3.7.8.) **यस्य पृथिवी शरीरम्** (बृ.उ.3.7.7) ये बृहदारण्यकोपनिषत् के अन्तर्यामी ब्राह्मण की श्रुतियाँ आकाशादि भूतों को ब्रह्म का शरीर और ब्रह्म को उनकी आत्मा कहती हैं, इससे आकाशादि और ब्रह्म का शरीर-आत्मभाव सिद्ध होता है। शरीर के वाचक शब्द शरीर का बोध कराते हुए उसमें रहने वाली आत्मा का भी बोध कराते हैं। इस प्रकार आकाशादि के वाचक आकाशादि शब्द उनका बोध कराते हुए उसमें रहने वाली आत्मा ब्रह्म का भी बोध कराते हैं अतः उक्त तैत्तिरीय श्रुति में आकाशादि शब्द आकाशादिशरीरक ब्रह्म का बोध कराते हैं, इस प्रकार आकाशशरीरक ब्रह्म से वायु उत्पन्न हुआ, वायुशरीरक ब्रह्म से तेज उत्पन्न हुआ, इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। आकाश तथा वायु आदि शब्दों से ब्रह्म का कथन मुख्य वृत्ति से ही होता है- **वाय्वादिशब्दैः ब्रह्माभिधानं मुख्यमेव** (प्रका.2.1.3)। शब्द का केवल विशेषण में प्रयोग अमुख्य (लक्षणा) वृत्ति से होता है- **विशेषणमात्रे प्रयोगस्तु अमुख्यः** (प्रका.2.1.3)। जैसे **क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि** (गी.13.2) यहाँ पर माम् का अर्थ मत्शरीरक (ब्रह्मशरीरक) न होकर मदात्मक[1] (ब्रह्मात्मक) है। यहाँ मदात्मक क्षेत्रज्ञ जीवात्मा है, वह ब्रह्म का विशेषण है माम् शब्द से केवल उसका बोध लक्षणावृत्ति से होता है।

*अब जगत्कारण ब्रह्म के विराटरूप का वर्णन किया जाता है-*

**अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।**
**वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥4॥**

---

टिप्पणी- 1. अहं (ब्रह्म) आत्मा नियन्ता यस्य सः मदात्मकः ब्रह्मशरीरभूतः इत्यर्थः।

**अन्वय**

अग्निः अस्य मूर्धा, चन्द्रसूर्यौ चक्षुषी, दिशः श्रोत्रे वेदाः वाग्विवृताः, वायुः प्राणः विश्वं हृदयं च पृथिवी पद्भ्याम्। एषः सर्वभूतान्तरात्मा हि।

**अर्थ**

**अग्निः**- द्युलोक (स्वर्गलोक) **अस्य**- ब्रह्म का **मूर्धा**- शिर है। **चन्द्रसूर्यौ**- चन्द्र और सूर्य **चक्षुषी**- नेत्र हैं। **दिशः**- सभी दिशाएं **श्रोत्रे**- कान हैं। **वेदाः**- वेद **वाग्विवृताः**- वाक् इन्द्रिय से उच्चरित हैं। सब ओर संचरण करने वाली **वायुः**- वायु, **प्राणः**- प्राण है। **विश्वम्**- सम्पूर्ण जगत् **हृदयम्**- हृदय है **च**- और **पृथिवी**- पृथ्वी **पद्भ्याम्**[1]- पैर है। **एषः**- यह ब्रह्म **सर्वभूतान्तरात्मा**- चेतनाऽचेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् का आत्मा **हि**- ही है।

**व्याख्या**

**विराट रूप**

हे गौतम! प्रसिद्ध द्युलोक ही अग्नि है- **असौ वाव लोको गौतमाग्निः** (छां.उ.5.4.1), **असौ वै लोकोऽग्निर्गौतम** (बृ.उ.6.2.9) इस प्रकार छान्दोग्य और बृहदारण्यक श्रुतियाँ द्युलोक को अग्नि कहती हैं, अतः प्रस्तुत मुण्डकश्रुति के अग्नि शब्द का द्युलोक अर्थ किया गया है। द्युलोक विराट पुरुष का शिर है, चन्द्रमा और सूर्य दो नेत्र हैं, सभी दिशाएं कान हैं। चारों वेद उनके द्वारा उच्चारण की गयी वाणी हैं। सब के जीवन का हेतु वायु उनका प्राण है। विश्व हृदय है और पृथ्वी दोनों चरण हैं। चेतनाचेतन सब जगत् उसका शरीर है और वह उनके अन्दर रहकर उनका नियमन करने वाला आत्मा है। प्रस्तुत श्रुति उपासना के लिए ब्रह्म के विराट रूप का वर्णन करती है।

*ब्रह्म के विराटरूप का वर्णन करके अब उसी सर्वभूतान्तरात्मा ब्रह्म से प्रजा की उत्पत्ति कही जाती है-*

---

**टिप्पणी**- 1. प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम् (वा.) इति अभेदे तृतीया।

**तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्।**
**पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् संप्रसूताः॥5॥**

### अन्वय

तस्मात् अग्निः, यस्य समिधः सूर्यः, सोमात् पर्जन्यः, पृथिव्याम् ओषधयः। पुमान् योषितायां रेतः सिञ्चति, पुरुषात् बह्वीः प्रजाः संप्रसूताः।

### अर्थ

**तस्मात्**- परमात्मा से **अग्निः**-स्वर्गलोकरूप अग्नि उत्पन्न होती है। **यस्य**- जिसका **समिधः**- इन्धन **सूर्यः**- सूर्य है। स्वर्गलोकरूप अग्नि से निष्पन्न **सोमात्**- सोम से **पर्जन्यः**- मेघ उत्पन्न होता है। पर्जन्य से वर्षा होने पर **पृथिव्याम्**- पृथ्वी में **ओषधयः**- गेहूँ, धान आदि अन्न उत्पन्न होते हैं। **पुमान्**- पुरुष **योषितायाम्**- स्त्री में **रेतः**- वीर्य **सिञ्चति**- सिंचन करता है। इस प्रकार **पुरुषात्**- परमात्मा से **बह्वीः**- बहुत **प्रजाः**- प्रजा **संप्रसूताः**- उत्पन्न होती है।

### व्याख्या

### प्रजा की उत्पत्ति

छान्दोग्योपनिषत् की पञ्चाग्निविद्या (छां.उ.5.4.1.- 5.8.2) में प्रजा की उत्पत्ति का वर्णन है। वहाँ स्वर्गलोक, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष और योषित् इन पाँचों को अग्नि कहा है तथा श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न और वीर्य इन पाँचों को उनमें डाली जाने वाली आहुति कहा है। प्रस्तुत मुण्डकोपनिषत् में स्वर्गलोक को अग्नि कहा है और सूर्य को समिधा। सूर्य से स्वर्गलोक प्रकाशित होता है इसलिए सूर्य स्वर्ग की समिधा है। पुण्यकर्म करने वाला जीव स्थूलशरीर को यहीं छोड़कर सूक्ष्मशरीर से स्वर्गलोक में जाता है। सूक्ष्म शरीर[1] सहित जीव को श्रद्धा कहते हैं। वह स्वर्गलोकरूप अग्नि में जाकर सोम हो जाता है। इस मन्त्र में स्वर्गभोगने योग्य दिव्य देवदेह से युक्त जीव को सोम कहा गया है। जीव स्वर्ग में

---

**टिप्पणी**- 1. सूक्ष्मशरीर का वर्णन विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन ग्रन्थ में देखना चाहिए।

सोम (चन्द्रमा) के पास जाकर सोम (सोम के समान) हो जाता है। इस प्रकार चन्द्रमा और स्वर्ग भोगने के लिए दिव्य देह से युक्त जीव ये दोनों ही सोम शब्द के अर्थ होते हैं। भोग से पुण्य क्षीण होने पर जीवात्मा चन्द्रमा से मेघरूप अग्नि में आकर उससे मिलकर मेघ हो जाता है। अब **सोमात् पर्जन्यः** का प्रकारान्तर से अर्थ प्रस्तुत है- पुण्यकर्म क्षीण होने पर जीवात्मा **सोमात्** - दिव्य देवशरीर को छोड़कर (मेघ में मिलकर) **पर्जन्यः**- मेघ हो जाता है। जब मेघ से वर्षा होने पर पृथ्वीरूप अग्नि में गेहूँ, धान आदि अन्न उत्पन्न होते हैं, तब मेघ में स्थित सूक्ष्मशरीर से युक्त जीव भी वर्षा के द्वारा पृथ्वी पर जाकर अन्न में स्थित हो जाता है। जब अन्न का पुरुषरूप अग्नि में होम होता है अर्थात् जब पुरुष उसे खाता है तब सूक्ष्मशरीर से युक्त जीव उसके अन्दर जाकर वीर्य में स्थित हो जाता है और जब पुरुष स्त्रीरूप अग्नि में वीर्यसिंचन करता है, तब वह स्त्री के गर्भ में जाता है। महाप्रलय के अनन्तर श्रीभगवान् स्वयं संकल्प करके महदादि से लेकर ब्रह्माण्डनिर्माण तथा ब्रह्मा की उत्पत्ति पर्यन्त सृष्टिकार्य करते हैं, तत्पश्चात् ब्रह्मा के द्वारा तथा माता-पिता के द्वारा सृष्टि करते हैं, इस प्रकार सारी सृष्टि के कर्ता परमात्मा ही हैं।

**तस्मादृचस्साम[1]यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।**
**संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः॥6॥**

**अन्वय**

तस्मात् ऋचः साम यजूंषि दीक्षाः यज्ञाः सर्वे क्रतवः च दक्षिणाः च संवत्सरः च यजमानः च लोकाः, यत्र सोमः पवते, यत्र सूर्यः।

**अर्थ**

**तस्मात्**- परमात्मा से **ऋचः**- ऋचाएं (ऋक् मन्त्र) **साम**- साम मन्त्र **यजूंषि**- यजुर्मन्त्र **दीक्षाः**- यज्ञकर्ता के नियमविशेष **यज्ञाः**- यज्ञ **सर्वे**- सभी **क्रतवः**- क्रतु **दक्षिणाः**- दक्षिणा **संवत्सरः**- संवत्सर **यजमानः**- यजमान **च**- और **लोकाः**- सभी लोक उत्पन्न हुए। **यत्र**-

---

**टिप्पणी**- 1. तस्मादृचः साम इत्यपि पाठः दृश्यते केषुचित्संस्करणेषु।

जिनमें **सोमः**- चन्द्रमा (अपनी किरणों से) **पवते**- पवित्र करता है (और) **यत्र**- जिनमें **सूर्यः**- प्रकाश करता है।

**व्याख्या**

**वेदादि की उत्पत्ति**

परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए। परमात्मा से वेद उत्पन्न होने का अर्थ है- परमात्मा के द्वारा वेदों का उपदेश होना। श्वेताश्वतर श्रुति कहती है कि परमात्मा जीवों में सबसे पहले ब्रह्मा को बनाता है और उसे वेदोपदेश करता है- **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै** (श्वे,उ,6.18) अथवा वेदों के अधिष्ठाता देवता परमात्मा से उत्पन्न हुए, यह भी उक्त मुण्डक वाक्य का अर्थ होता है। परमात्मा ने यज्ञकर्ता के आचरणीय नियमों का भी उपदेश किया। अग्निहोत्रादि यज्ञ हैं और पशु से सम्बद्ध सभी सोमयाग क्रतु कहलाते हैं- **यज्ञाः अग्निहोत्रादयः। सर्वे क्रतवः सोमयागाः पशुसम्बद्धाः** (उ.ख.)। यज्ञ में दी जाने वाली सभी प्रकार की दक्षिणाएं, यज्ञकर्ता यजमान और संवत्सर का अधिष्ठाता देवता परमात्मा से उत्पन्न हुए। जहाँ चन्द्र अपनी किरणों से पवित्रता करता है और सूर्य प्रकाश करता है, वे सभी लोक भी परमात्मा से उत्पन्न हुए।

**तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।**
**प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च॥7॥**

**अन्वय**

तस्मात् बहुधा देवाः साध्याः मनुष्याः पशवः च वयांसि संप्रसूताः। प्राणापानौ, ब्रीहियवौ, तपः, श्रद्धा, सत्यं च ब्रह्मचर्यं च विधिः।

**अर्थ**

**तस्मात्**- परमात्मा से **बहुधा**- बहुत प्रकार के **देवाः**- देवता **साध्याः**- साध्य **मनुष्याः**- मनुष्य **पशवः**- पशु **च**- और **वयांसि**- पक्षी **संप्रसूताः**- पैदा हुए (तथा उसी से) **प्राणापानौ**- प्राण, अपान **व्रीहियवौ**- धान और जौ **तपः**- तप **श्रद्धा**- आस्तिक्यबुद्धि **सत्यम्**- सत्यवचन

**ब्रह्मचर्यम्**- ब्रह्मचर्य **च**- और **विधि**[1]- नित्य-नैमित्तिक कर्म उत्पन्न हुए।

**व्याख्या**

## देव आदि की उत्पत्ति

वसु, रुद्र, आदित्य, अरुण, इन्द्र और प्रजापति आदि बहुत प्रकार के देवता हैं। आजानजदेव, कर्मदेव और देव ये तीन भेद तैत्तिरीयोपनिषत् (2.8) में प्रसिद्ध हैं। गणदेवताओं में साध्यों की गणना है। सभी प्रकार के देवता परमात्मा से उत्पन्न हुए। स्वभाव भेद से बहुत प्रकार के मनुष्य, पशु और पक्षी भी उसी से उत्पन्न हुए। सभी प्रकार के प्राण और व्रीहि, यवादि अन्न भी उसी से हुए। तप[2], श्रद्धा, सत्यवचन ब्रह्मचर्य[3] और नित्यनैमित्तिक कर्मों के स्वरूप को भी उसी ने समझाया।

**सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः**[4]**।**
**सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त॥8॥**

**अन्वय**

तस्मात् सप्त प्राणाः, सप्त अर्चिषः, समिधः, सप्त होमाः, इमे सप्त लोकाः प्रभवन्ति। गुहाशयाः सप्त सप्त प्राणाः येषु निहिताः चरन्ति।

**अर्थ**

**तस्मात्**- परमात्मा से (चक्षु आदि) **सप्त**- सात **प्राणाः**- इन्द्रियाँ **सप्त**- सात **अर्चिषः**- विषयभोग की प्रज्वलित (तीव्र) वासनाएं **समिध**:- विषय **सप्त**- सात **होमाः**- इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध अथवा विषय का ज्ञान (और) **इमे**- ये **सप्त**- सात **लोकाः**- गोलक[5] **प्रभवन्ति**-

---

**टिप्पणी**- 1. विधीयते इति विधिः नित्यनैमित्तिकादिः (प्रका.)

2. और 3. इनको विस्तार से समझने के लिए प्रश्नोपनिषत् की तत्त्वविवेचनी व्याख्या का अवलोकन करना चाहिए।

4. जिह्वा इति प्रकाशिकासम्मतः पाठः।

5. इन्द्रियों के रहने का स्थान गोलक कहलाता है।

उत्पन्न होते है। सुषुप्तिकाल में **गुहाशयाः**- हृदय गुहा में निवास करने वाली **सप्त सप्त**[1]- सात सात **प्राणाः**- इन्द्रियाँ (जाग्रतकाल में) **येषु**- जिन गोलकों में **निहिताः**- स्थित होकर (विषयों में) **चरन्ति**- विचरण करती हैं।

**व्याख्या**

शरीर के ऊपरी भाग में रहने वाली घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और वाक् ये 4 इन्द्रियाँ होती हैं फिर भी गोलक के भेद से घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्र को दो-दो मानकर और 1 मुख को लेकर उपचार से सात कही जाती हैं। घ्राण (नाक) इन्द्रिय के गोलक 2 + चक्षु इन्द्रिय के गोलक 2 + श्रोत्र के गोलक 2 + वाक् इन्द्रिय का गोलक मुख 1= 7, शरीर के शीर्ष (ऊपरी) भाग में 7 इन्द्रियाँ होती हैं - **सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः** (तै. सं.5.1.7) ये इन्द्रियाँ परमात्मा से उत्पन्न होती हैं। इन इन्द्रियों से विषय को भोगने की ज्वाला के समान प्रचण्ड वासनाएं परमात्मा से होती हैं। जैसे समिधा से अग्नि प्रज्वलित होने पर काली, कराली आदि ज्वालाएं होती हैं, वैसे ही विषयों से इन्द्रियाँ उत्तेजित होने पर भोगवासनाएं होती हैं इसलिए विषय को समिधा कहा गया है। पूर्व-पूर्व विषय अग्नि की समिधा और उत्तरोत्तर विषय आहुतिरूप होते हैं। अग्नि में आहुति के समर्पण को होम कहते है, इसलिए इन्द्रियरूप अग्नि में विषय का समर्पण होम कहा गया है।

जीवात्मा सभी इन्द्रियों के मूलस्थान हृदय में रहता है- **सर्वेन्द्रियकन्दभूते स्थानविशेषे वृत्तिः** (ब्र.सू.भा.1.2.18) इन्द्रियाँ सुषुप्ति अवस्था में गोलकों को छोड़कर अपने मूलस्थान हृदय में रहती हैं और जाग्रत अवस्था में नाडियों के द्वारा जिन गोलकों में जाकर विषयों में संचरण करती रहती हैं, वे गोलक भी परमात्मा से उत्पन्न होते हैं।

**अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।**
**अतश्च सर्वा ओषधयो रसाश्च[2] येनैष भूतैः तिष्ठते[3] ह्यन्तरात्मा।।9।।**

**टिप्पणी**- 1. सप्त सप्तेति वीप्सा पुरुषभेदाभिप्राया (प्रका.)।

2. रसश्च इति पाठान्तरः।

3. भूतैस्तिष्ठते इति ससन्धिरपि पाठः दृश्यते।

**अन्वय**

अतः सर्वे समुद्राः च गिरयः अस्मात् सर्वरूपाः सिन्धवः स्यन्दन्ते। अतः सर्वाः ओषधयः च रसाः च येन एषः हि भूतैः अन्तरात्मा तिष्ठते।

**अर्थ**

**अतः**- परमात्मा से **सर्वे**- सभी **समुद्राः**- समुद्र **च**- और **गिरयः**- पर्वत उत्पन्न होते हैं। **अस्मात्**- परमात्मा से **सर्वरूपाः**- अनेक रूप वाली **सिन्धवः**- नदियाँ **स्यन्दन्ते**- बहती हैं। **अतः**- परमात्मा से **सर्वाः**- सभी **ओषधयः**- ब्रीहि, यव आदि ओषधियाँ **च**- और **रसाः**- रस उत्पन्न होते हैं। **येन**- जिस कारण **एषः**- परमात्मा **हि**- ही **भूतैः**- भूतों से विशिष्ट होकर (उनके) **अन्तरात्मा**- अन्तरात्मारूप से **तिष्ठते**- रहता है।

**व्याख्या**

लवण (खारा) समुद्र प्रत्यक्षसिद्ध है। इससे अतिरिक्त छः समुद्र[1] भी शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं- इक्षुरस समुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिमण्ड[2] समुद्र, क्षीरसमुद्र और स्वादूदक (स्वादु जल वाला) समुद्र। हिमालय, विन्ध्याचल और सुमेरु आदि पर्वत हैं। इन सभी को परमात्मा ने ही बनाया है। भागीरथी गङ्गा का शुक्ल वर्ण है और यमुना का नील। अनेक प्रकार वाली इन गङ्गा, यमुना, सरयू और सरस्वती आदि नदियों को प्रवाहित करने वाले परमात्मा ही हैं। सभी प्रकार की ओषधियाँ और रस भी परमात्मा से उत्पन्न होते हैं।

**अन्तरात्मा ब्रह्म**

ओषधियाँ पृथ्वी से उत्पन्न होती हैं और रस फलादि से, तो ये सभी परमात्मा से उत्पन्न होते हैं, यह कथन कैसे संभव है? इस शंका का समाधान करने के लिए ही श्रुति **येनैष भूतैः तिष्ठते ह्यन्तरात्मा**

---

**टिप्पणी**- 1. इनका वर्णन विष्णुपराण (अंश 2,अध्याय 4) में देखना चाहिए।

2. दध्नः मण्डः सारः स एव उदकं यस्य(वि. चि. 2.4.58)

कहती है। पृथ्वी आदि भूत और फलादि परमात्मा के ही आश्रित रहने वाले उनके अपृथक्सिद्ध विशेषण हैं, उनसे विशिष्ट रहने वाले परमात्मा उनके अन्तरात्मारूप से रहते है, इसलिए परमात्मा से ओषधि की उत्पत्ति का अर्थ है- पृथ्वीविशिष्ट परमात्मा से ओषधि की उत्पत्ति और परमात्मा से रस की उत्पत्ति का अर्थ है- फलविशिष्ट परमात्मा से रस की उत्पत्ति, इस प्रकार परमात्मा से ओषधि और रस की उत्पत्ति का कथन संभव होता है।

**पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।**
**एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य॥10॥**

**॥ इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥**

**अन्वय**

सोम्य! इदं विश्वं पुरुषः एव। कर्म तपः परामृतं ब्रह्म। यः गुहायां निहितं एतत् वेद, सः इह अविद्याग्रन्थिं विकिरति।

**अर्थ**

**सोम्य**- हे सोम्य शौनक! **इदम्**- यह **विश्वम्**- जगत **पुरुषः**- ब्रह्म **एव**- ही है। जिसका सृष्टि के अनुकूल **कर्म**- कर्म **तपः**- संकल्पात्मक ज्ञान है। **परामृतम्**- मुक्तों का अमृत के समान निरतिशय भोग्य **ब्रह्म**- ब्रह्म है। **यः**- जो मुमुक्षु **गुहायाम्**- हृदय गुहा में **निहितम्**- स्थित **एतत्**- ब्रह्म को **वेद**- जानता है, **सः**- वह **इह**- इसी शरीर में रहते **अविद्याग्रन्थिम्**- अविद्या ग्रन्थि को **विकिरति**- नष्ट कर देता है।

**व्याख्या**

**विश्व ब्रह्म**

जैसे मिट्टी घटरूप होती है, वैसे ब्रह्म जगत्रूप होता है। यहाँ सूक्ष्म (नामरूपविभाग के अभाव वाला) चेतनाऽचेतन से विशिष्ट ब्रह्म कारण है और स्थूल (नामरूपविभाग वाला) चेतनाऽचेतन से विशिष्ट ब्रह्म कार्य है, इसे ही जगत् कहते हैं। जैसे घटादि मिट्टी ही हैं इसलिए

मिट्टी का ज्ञान होने पर उसके सभी घटादि कार्यों का ज्ञान हो जाता है, वैसे जगत् ब्रह्म ही है इसलिए कारण ब्रह्म का ज्ञान होने पर उसके कार्य सम्पूर्ण जगत् का ज्ञान हो जाता है, यह **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति**।(मु.उ.1.1.3) इस पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर कहा जाता है। ब्रह्म को सृष्टि करने के लिए संकल्प (ज्ञानविशेष) से अतिरिक्त कोई कर्म नहीं करना पड़ता। संकल्पात्मक ज्ञान ही परमात्मा का तप है- **यस्य ज्ञानमयं तपः** (मु.उ.1.1.10)। ब्रह्म संकल्पमात्र से जगत् की सृष्टि करते हैं, प्रकृति से सम्बद्ध बद्ध आत्माओं से पर मुक्तात्माओं का अमृत के समान निरतिशय भोग्य यह ब्रह्म ही है। जो हृदय गुहा में स्थित इस ब्रह्म की उपासना करता है, वह इसी शरीर के रहते ग्रन्थि के समान दुर्मोच्य (छोड़ने में कठिन) अविद्या को नष्ट कर देता है।

## द्वितीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः

**हरिः ओम्।**

**आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् अत्रैतत् समर्पितम्**[1]**। एजत् प्राणन्निमिषच्च यद् एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद् यद् वरिष्ठं प्रजानाम्॥1॥**

### अन्वय

आविः गुहाचरं सन्निहितम्, नाम महत् पदम्, यत् एजत् च निमिषत् प्राणत् एतत् अत्र समर्पितम्, यत् प्रजानां वरिष्ठं विज्ञानात् परं सदसद्वरेण्यं एतत् जानथ।

### अर्थ

योगियों के लिए **आविः**- अपरोक्ष ब्रह्म **गुहाचरम्**- हृदयगुहा में विद्यमान है इसलिए सबके **सन्निहितम्**- अत्यन्त निकट है। वह दुर्विज्ञेयरूप से **नाम**- प्रसिद्ध **महत्**- सर्वोत्तम **पदम्**- प्राप्य है। **यत्**- जो

---

**टिप्पणी**- 1. 'सर्वमर्पितम्' इति पाठान्तरः।

**एजत्**[1]- जाग्रत अवस्था वाला **च**- और **निमिषत्**[2]- स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्था वाला **प्राणत्**[3]- प्राणिवर्ग है। **एतत्**- यह सब **अत्र**- इस ब्रह्म में **समर्पितम्**- समर्पित (स्थित) है। **यत्**- जो **प्रजानाम्**- प्रजा का **वरिष्ठम्**[4]- अत्यन्त वरणीय **विज्ञानात्**- जीवात्मा से **परम्**- श्रेष्ठ तथा **सदसद्वरेण्यम्**[5]- स्थूल और सूक्ष्म वस्तुओं का आधार है। **एतत्**- इसे **जानथ**- जानो।

**व्याख्या**

**सर्वाधार ब्रह्म**

ब्रह्मवेत्ताओं का प्रत्यक्ष ब्रह्म सबके हृदय में रहता है, इसलिए सर्वाधिक निकट है फिर भी सबको उसका ज्ञान सुलभ नहीं है अतः वह दुर्विज्ञेयरूप से प्रसिद्ध है, वही सबसे उत्तम प्राप्यवस्तु है। जाग्रत आदि सभी अवस्थाओं वाले प्राणी उसी में आश्रित हैं। वह मुमुक्षुप्रजा के द्वारा अत्यन्त प्रार्थनीय तथा जीवात्मा से पर है। जो परमात्मा जीवात्मा में रहते हुए- **यो विज्ञाने तिष्ठन्** (बृ.उ.3.7.26) यहाँ भी विज्ञान का अर्थ जीवात्मा है। परमात्मा स्थूल और सूक्ष्म सभी वस्तुओं का आधार है। यहाँ स्थूल से पृथ्वी, जल, तेज इन मूर्त पदार्थों का ग्रहण होता है और सूक्ष्म से वायु, आकाश इन अमूर्त पदार्थों का अथवा स्थूल से नामरूप-विभागवाले चेतनाऽचेतन का ग्रहण होता है और सूक्ष्म से नामरूपविभाग-रहित चेतनाऽचेतन का। जो प्रजा का अत्यन्त इष्ट, जीवात्मा से पर तथा सबका आधार ब्रह्म है, उसे जानो।

**यदर्चिमद् यदणुभ्योऽणु[6] यस्मिंल्लोका[7] निहिता लोकिनश्च। तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदुवाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद् वेद्धव्यं सोम्य विद्धि॥2॥**

---

**टिप्पणी**- 1. एजत् कम्पमानं जाग्रद् इति यावत् (प्रका.)।

2. निमिषत् सुप्तम् (प्रका.)। 3. प्राणत् प्राणभृत् (प्रका.)।

4. प्रजानाम् उपायोपेयत्वेनात्यन्तवरणीयम् अत्यन्तप्रार्थनीयम् इत्यर्थः (प्रका.)।

5. स्थूलसूक्ष्मवस्तुभिः आधारत्वेन प्रार्थनीयम्, आधारभूतम् इति यावत् (प्रका.)।

6. यदणुभ्योऽणु च इत्यपि पाठः दृश्यते कुत्रचित्।

7. यस्मिन् लोकाः इति सन्धिरहितोऽपि पाठः दृश्यते।

**अन्वय**

यत् अर्चिमत्, यत् अणुभ्यः अणु, यस्मिन् लोकाः निहिताः च लोकिनः। तत् एतत् अक्षरं ब्रह्म, प्राणः सः उ वाङ्मनः तत्। तत् एतत् सत्यम्, तत् अमृतम्, सोम्य तत् वेद्धव्यं विद्धि।

**अर्थ**

**यत्**- जो ब्रह्मस्वरूप **अर्चिमत्**- दीप्तिमान् है। **यत्**- जो **अणुभ्यः**- सूक्ष्म से **अणु**- अतिसूक्ष्म है। **यस्मिन्**- जिसमें **लोकाः**- लोक **निहिताः**- स्थित हैं **च**- और **लोकिनः**- लोकवासी (भी स्थित हैं।) **तत्**- वह **एतत्**- यह **अक्षरम्**- निर्विकार **ब्रह्म**- ब्रह्म है। **प्राणः**- प्राण **सः**- तदात्मक (ब्रह्मात्मक[1]) **उ**- ही है। **वाङ्मनः2**- वाणी और मन **तत्**- तदात्मक हैं। **तत्**- वह **एतत्**- यह ब्रह्म **सत्यम्**- नित्य है। **तत्**- वह **अमृतम्**- असंसारी अथवा निरतिशय भोग्य है। **सोम्य**- हे सोम्य! तुम **तत्**- उस ब्रह्म को **वेद्धव्यम्**- वीधने योग्य अर्थात् समाहित मन का विषय **विद्धि**- जानो।

**व्याख्या**

परमात्मा के श्रीविग्रह की कान्ति होती है, वह श्रीविग्रह के द्वारा परमात्मस्वरूप की कही जाती है। परमात्मा सूक्ष्म पदार्थों से भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं इसीलिए सभी के अन्दर प्रवेश करके रहते हैं। पृथ्वी आदि सभी लोकों का और उनमें निवास करने वाले सभी प्राणियों का आधार परमात्मा ही है, वह विकाररहित है। सब के जीवनधारण का हेतु जो प्राण है, वह ब्रह्मात्मक है, स्वतन्त्र नहीं। वाणी और मन भी ब्रह्मात्मक ही हैं। परमात्मा अमृत है अर्थात् प्रकृति के संसर्ग से सर्वथा रहित है अथवा मुक्तों का निरतिशय भोग्य है। हे सोम्य! तुम उसे समाहित मन से साक्षात्करणीय समझो। हे सोम्य! तुम उस ब्रह्म का समाहित मन से ध्यान करो, यह तात्पर्य है। पूर्व (मु.उ.2.2.1) में **जानथ** इस प्रकार जिस ज्ञान का विधान किया था वह ध्यानरूप है, ऐसा समझना चाहिए। इस

---

**टिप्पणी** 1. ब्रह्म आत्मा नियन्ता यस्य सः ब्रह्मात्मकः, ब्रह्मशरीरभूतः इत्यर्थः।

2. यहाँ वाक् और मन क्रमशः सभी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के उपलक्षण हैं।

प्रकार ब्रह्मज्ञान की ध्यानरूपता विधेय होती है।

*वेद्धव्य ब्रह्म को कहकर अब वेधन की रीति को कहते हैं-*

**धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्दधीत[1]। आयम्य तद्भावगतेन ( तद्भागवतेन ) चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि॥3॥**

**अन्वय**

औपनिषदं महास्त्रं धनुः गृहीत्वा उपासानिशितं शरं हि सन्दधीत। सोम्य तद्भावगतेन चेतसा (भागवतेन चेतसा तद्) आयम्य तद् अक्षरम् एव लक्ष्यं विद्धि।

**अर्थ**

**औपनिषदम्**- उपनिषदों में प्रसिद्ध प्रणवरूप **महास्त्रम्**- महान् अस्त्र **धनुः**- धनुष को **गृहीत्वा**- लेकर (उसमें) **उपासानिशितम्**- ब्रह्मोपासना के द्वारा स्थूल और सूक्ष्म शरीर से भिन्न ज्ञात **शरम्**- आत्मरूप बाण का **हि**- अवश्य **सन्दधीत**- संधान करें। **सोम्य**- हे सोम्य! **तदभावगतेन**- परमात्मप्राप्तिविषयक **चेतसा**- इच्छा से (आत्म रूप बाण को)(**भागवतेन**-परमात्मप्रवण **चेतसा**- चित्त से **तद्**- प्रणवरूप धनुष को) **आयम्य**- खींचकर **तद्**- वेधव्य **अक्षरम्**- परमात्मा को **एव**- ही **लक्ष्यम्**- लक्ष्य **विद्धि**- जानो।

**व्याख्या**

**ओंकारपूर्वक ध्यान**

इसी उपनिषत् में अग्रिम मन्त्र से **प्रणवो धनुः** (मु.उ.2.2.4) इस प्रकार प्रणवरूप धनुष का तथा **शरो ह्यात्मा** (मु.उ.2.2.4) इस प्रकार बाणरूप आत्मा का वर्णन किया जायेगा । मुमुक्षु पुरुष धनुर्धारी के समान है। मोक्ष की साधना भी एक प्रकार का युद्ध है, इसमें ओंकाररूप धनुष से आत्मरूप बाण को वेद्धव्य लक्ष्य परमात्मा में पहुँचा कर स्थिर किया जाता है। उपनिषदों में प्रणव प्रसिद्ध है, वह महान् है और मुमुक्षु का

---

**टिप्पणी**- 1. सन्धीयते इति प्रतिपदार्थदीपिकासम्मतपाठः।

अस्त्र भी। प्रणव की महत्ता कठोपनिषत् में इस प्रकार वर्णित है- **एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् । एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।** (क.उ.1.2.16-17) उपासानिशितम् का अर्थ है- उपासना से तीक्ष्ण (पैना) किया गया। ब्रह्मोपासना से अपने प्रत्यगात्मस्वरूप को स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर से भिन्न समझना ही तीक्ष्ण करना है। तीक्ष्ण अस्त्र ही लक्ष्य में ठीक से प्रविष्ट (स्थित) होता है। यह दृश्य शरीर स्थूलशरीर है। इसके अन्दर भी एक शरीर विद्यमान है, जिसे सूक्ष्मशरीर कहते हैं। जैसे प्रत्यगात्मा स्थूल शरीर से भिन्न है, वैसे ही सूक्ष्मशरीर से भी भिन्न है। स्थूलशरीर में देहात्मबुद्धि निवृत होने पर भी सूक्ष्मशरीर में देहात्मबुद्धि होती है, अतः उससे भी भिन्न उपने स्वरूप को समझना चाहिए। उपनिषदों में प्रसिद्ध महान् अस्त्र प्रणवरूप धनुष को लेकर उसमें प्रत्यगात्मरूप शर का संधान करना चाहिए। 'तद्भावगतेन चेतसा' यहाँ तद्भाव का अर्थ है- परमात्मप्राप्ति, तद्भावगतेन चेतसा का अर्थ है- परमात्मप्राप्ति की इच्छा से- **तद्भावः तत्प्राप्तिः, तद्भावगतेन चेतसा तद्प्राप्तीच्छया** (प्रका.)। धनुष पर बाण का संधान करके (धनुष पर बाण को रखकर) लक्ष्य का वेधन करने के लिए उसे खींचते हैं। परमात्मप्राप्ति की इच्छा से आत्मरूप शर को खींचकर वेधने योग्य लक्ष्य परमात्मा को ही जानो। यहाँ प्रत्यगात्मरूप शर को खींचने का अर्थ है- चक्षु आदि इन्द्रियों और मन के सहित आत्मा को अन्य विषयों से हटाकर लक्ष्य परमात्मा के अभिमुख करना। अब 'तद्भावगतेन' के स्थान पर 'तद्भागवतेन' पाठान्तर स्वीकार करके अर्थ करते हैं- परमात्मा में लगे मन के द्वारा ओंकाररूप धनुष को खींचकर वेद्धव्य लक्ष्य परमात्मा को ही जानो। ओंकार(ओम्) में अकार शेषी परमात्मा को, मकार शेष प्रत्यगात्मा को तथा उकार दोनों के सम्बन्ध को कहता है अतः ओंकाररूप धनुष को खींचने का अर्थ है- शेष प्रत्यगात्मा और शेषी परमात्मा के सम्बन्ध के बोधकरूप से ओंकार का अनुसंधान करना।

*लक्ष्यवेधन की रीति को कहकर अब धनुष और शर के अर्थों को कहते हुए वेधन को तथा तत्पश्चात् होने वाली तन्मयता को कहते हैं।*

**प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।**
**अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्॥4॥**

### अन्वय

प्रणवः हि धनुः आत्मा शरः, तत् ब्रह्म लक्ष्यम् उच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यम्, शरवत् तन्मयः भवेत्।

### अर्थ

**प्रणवः**- ओंकार(ओम्) **हि**- ही **धनुः**- धनुष् है। **आत्मा**- आत्मा (ही) **शरः**- बाण है। **तत्**- वह **ब्रह्म**- ब्रह्म **लक्ष्यम्**- लक्ष्य **उच्यते**- कहा जाता है। उसका **अप्रमत्तेन**- एकाग्र चित्त से **वेद्धव्यम्**- वेधन करना चाहिए (और) **शरवत्**- शर के समान **तन्मयः**- तन्मय **भवेत्**- हो जाना चाहिए।

### व्याख्या

परमात्मा में प्रत्यगात्मरूप शर को समर्पित करने का साधन ओम् है, इसलिए उसे धनुष कहा जाता है। प्रत्यगात्मा को ओम्रूप धनुष से ब्रह्म में समर्पित किया जाता है, इसलिए वह लक्ष्य है। ओम् से ब्रह्मरूप लक्ष्य में आत्मा को समर्पित किया जाता है, इसलिए उसे शर कहते हैं। पूर्वोक्त रीति से ओम्रूप धनुष में आत्मरूप शर का संधान कर और उसे खींच कर ब्रह्मरूप लक्ष्य का विषयान्तर में प्रवृत्ति से रहित एकाग्र चित्त से वेधन करना चाहिए। यहाँ वेधन करने का अर्थ है- शेषी परमात्मा का ध्यान करना अन्यथा प्रत्यगात्मा विषयों में प्रवृत्त होता रहता है।

अशुद्ध मन होने पर आत्मा इन्द्रियों से वृत्ति के द्वारा विषय में स्थित होता है, परमात्मा में स्थित नहीं होता किन्तु आत्मा शुद्धमन से ध्यानद्वारा परमात्मा में स्थित होता है। यथा लक्ष्य में निमग्न शर को लक्ष्य से अतिरिक्त भेदक आकारों का भान नहीं होता, वैसे ही प्रणव के द्वारा परमात्मा में समर्पित आत्मा को 'मैं देवता हूँ,' 'मैं मनुष्य हूँ' इत्यादि प्रकार से देवत्व, मनुष्यत्वादिरूप भेदक आकारों का भान न होना ही

तन्मय होना है अर्थात् परमात्मा में आत्मा स्थित होने पर विजातीयप्रत्यय नहीं होना चाहिए, अपितु उत्तरोत्तर प्रगाढ़ ध्यान होना चाहिए।

**यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।**
**तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः॥5॥**

**अन्वय**

यस्मिन् द्यौः पृथिवी च अन्तरिक्षं च सर्वैः प्राणैः सह मनः ओतम्। तम् एकम् आत्मानम् एव जानथ, अन्याः वाचः विमुञ्चथ, एषः अमृतस्य सेतुः।

**अर्थ**

**यस्मिन्**- जिसमें **द्यौः**- स्वर्गलोक **पृथिवी**- पृथ्वी **अन्तरिक्षम्**- आकाश **च**- और **सर्वैः**- सभी **प्राणैः**- प्राणों के **सह**- साथ **मनः**- मन **ओतम्**- सम्बद्ध है। तुम सब **तम्**- उस **एकम्**- एक **आत्मानम्**- चेतनाऽचेतन सब के नियन्ता परमात्मा को **एव**- ही **जानथ**- जानो। **अन्याः**- अनात्मा को विषय करने वाले **वाचः**- वचनों को **विमुञ्चथ**- छोड़ दो। **एषः**- परमात्मा **अमृतस्य**- मोक्ष की **सेतुः**- प्राप्ति का साधन है।

**व्याख्या**

**मोक्ष का प्रापक परमात्मा**

जिसमें पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग ये तीनों लोक तथा शरीर में चेतन आत्मा की स्थिति के लिए उपयोगी प्राण और सभी इन्द्रियों के सहित मन अविनाभाव से सम्बद्ध है, उस स्वेतरसमस्त वस्तुओं के नियन्ता व्यापक परमात्मा को जानो, उससे भिन्न अनात्मविषयक बातों को बिल्कुल छोड़ दो क्योंकि यह परमात्मा ही मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है।

**अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः। ओमित्येवं ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्॥6॥**

**अन्वय**

रथनाभौ संहताः अराः इव यत्र नाड्यः बहुधा जायमानः सः एषः अन्तः चरते। तमसः परस्तात् पाराय ओम् इति एवम् आत्मानं ध्यायथ। वः स्वस्तिः।

**अर्थ**

**रथनाभौ**- रथ के पहिए की नाभि में **संहताः**- संलग्न **अराः**- अरों के **इव**- समान **यत्र**- जिस हृदय में **नाड्यः**- नाडियाँ संलग्न होती हैं। **बहुधा**- बहुत रूप से **जायमानः**- अवतरित होने वाला **सः**- पूर्वोक्त **एषः**- परमात्मा (उस हृदय में) **अन्तः**- अन्दर **चरते**- रहता है। **तमसः**- अविद्यारूप संसार से **परस्तात्**- पर (संसार के) **पाराय**- दूसरे तीर (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए **ओम्**- ओम् **इति**- इस **एवम्**- प्रकार **आत्मानम्**- परमात्मा का **ध्यायथ**- ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार ध्यान में प्रवृत्त होने वाले **वः**- तुम सब का **स्वस्ति**- कल्याण हो।

**व्याख्या**

जैसे रथ के चक्र की नाभि (मध्य स्थान) में अर प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर रहने वाली नाड़ियाँ हृदय में प्रविष्ट होती हैं। कुछ खिले कमल के समान हृदय नाड़ियों से व्याप्त होकर लटकता है- **संततं सिराभिस्तुः लम्बत्याकोशसंनिभम्** (तै.ना.उ.97) यह श्रुति हृदय में नाडियों का प्रवेश (व्याप्ति) कहती है। जो परमात्मा भक्तोद्धार आदि कार्यों के लिए धराधाम पर श्रीराम, कृष्णादि विविध रूपों में अवतरित होते हैं। वे हृदय में अन्तर्यामी रूप से रहते हैं अथवा उपासना की सुविधा के लिए भक्तों की रुचि के अनुसार **बहुधा**- बहुत प्रकार के **जायमानः**- विग्रह से विशिष्ट होकर हृदय के भीतर रहते हैं। संसाररूप अविद्या से पर उसके तीर मोक्ष की प्राप्ति के लिए 'ओम्' इस प्रकार परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। संसार से पार जाने के लिए ध्यानयोग में प्रवृत्त होने वाले सभी का मङ्गल हो, ब्रह्मविद्या के उपदेशक आचार्य करुणावशात् ऐसी शुभकामना व्यक्त करते हैं।

**यः सर्वज्ञस्सर्वविद्[1] यस्यैष महिमा भुवि।**
**दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।।7।।**

**अन्वय**

यः सर्वज्ञः सर्ववित्, भुवि यस्य एषः महिमा। दिव्ये व्योम्नि ब्रह्मपुरे एषः आत्मा हि प्रतिष्ठितः।

**अर्थ**

**यः**- जो परमात्मा **सर्वज्ञः**- सबको सामान्यरूप से जानने वाला (और) **सर्ववित्**- सब को विशेषरूप से जानने वाला है। **भुवि**- लीलाविभूति में **यस्य**- जिसकी **एषः**- संसारचक्र प्रवर्तनरूप **महिमा**- महिमा है। **दिव्ये**- दिव्य **व्योम्नि**- परमाकाश **ब्रह्मपुरे**- भगवद्धाम में (वह) **एषः**- यह **आत्मा**- परमात्मा **हि**- ही **प्रतिष्ठितः**- विराजमान है।

**व्याख्या**

इस मन्त्र में पृथ्वी लोक के वाचक भू शब्द से लीलाविभूति (समग्र प्रकृतिमण्डल) को लिया जाता है और ब्रह्मपुर शब्द से अप्राकृत त्रिपाद्विभूति को लिया जाता है। वहाँ सर्वज्ञ, सर्वविद्, अनन्तमहिमाशाली, व्यापक परमात्मा ही दिव्यमङ्गलविग्रह को धारण करके परवासुदेवरूप से सदा विराजमान रहते हैं।

**मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।**
**तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति।।8।।**

**अन्वय**

यत् मनोमयः प्राणशरीरनेता अन्ने प्रतिष्ठितः। हृदयं सन्निधाय अमृतम् आनन्दरूपं विभाति। धीराः विज्ञानेन तत् परिपश्यन्ति।

**अर्थ**

**यत्**- जो परमात्मा **मनोमयः**- विशुद्ध मन से ग्राह्य **प्राणशरीरनेता**-

---

**टिप्पणी**- 1.'सर्वज्ञस्सर्ववित्' इति पाठान्तरः।

जीव के साथ प्राण और शरीर का संयोग करने वाला (और) **अन्ने**-अन्न का परिणाम शरीर में **प्रतिष्ठितः**- रहता है। (उसमें) **हृदयम्**- मन को **सन्निधाय**- लगाकर जो **अमृतम्**- संसार के लेश से भी रहित **आनन्दरूपम्**- आनन्दरूप परमात्मा **विभाति**- प्रकाशित होता है। **धीराः**- ब्रह्मोपासक **विज्ञानेन**- दर्शनसमानाकार ज्ञान से **तत्**- उसका **परिपश्यन्ति**- साक्षात्कार करते हैं।

**व्याख्या**

**ब्रह्मसाक्षात्कार**

परमात्मा विशुद्ध मन से ग्राह्य है, ऐसा **दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया** (क.उ.1.3.12) यह कठ श्रुति भी कहती है, वह जीव को भोग और मोक्षप्राप्ति के लिए प्राण और शरीर से संयुक्त करने वाला है अथवा प्राणशरीरनेता का अर्थ प्राणशरीरक प्रभु है। **अधिर्भूनायको नेता प्रभुः** (अ.को.3.1.11) इस शब्दकोश वचन के अनुसार प्रभु का पर्याय नेता शब्द है। अन्न का परिणाम दृश्य स्थूलशरीर है, उसमें परमात्मा विद्यमान रहता है, उसमें मन को लगाने से जो संसारसम्बन्ध के लेश से भी रहित आनन्दरूप परमात्मा प्रतीत होता है। धीरपुरुष दर्शनसमानाकार ध्यान से उसका साक्षात्कार करते हैं। आनन्दरूप परमात्मा में मन को लगाने से उसकी प्रतीति होती है और उत्तरोत्तर गहन अभ्यास करके दर्शनसमानाकार ध्यान से साक्षात्कार होता है अतः अतिशीघ्र परमात्मसाक्षात्कार के साधन में प्रवृत्त हो जाना चाहिए।

**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।**
**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥9॥**

**अन्वय**

तस्मिन् परावरे दृष्टे हृदयग्रन्थिः भिद्यते। सर्वसंशयाः छिद्यन्ते च अस्य कर्माणि क्षीयन्ते।

**अर्थ**

**तस्मिन्**- वह **परावरे**- सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म **दृष्टे**- साक्षात्कृत होने पर

**हृदयग्रन्थिः**- रागद्वेषादि **भिद्यते**- नष्ट हो जाते हैं। **सर्वसंशयाः**- सभी संशय **छिद्यन्ते**- निवृत्त हो जाते हैं **च**- और **अस्य**- ब्रह्मदर्शी के **कर्माणि**- सभी कर्म **क्षीयन्ते**- नष्ट हो जाते हैं।

**व्याख्या**

**ब्रह्मसाक्षात्कार का फल**

पर (श्रेष्ठ इन्द्रादि देवता) भी जिससे अवर (तुच्छ) हैं, वह (परमात्मा) परावर कहलाता है- **परे इन्द्रादयः देवाः अवरे यस्मात् सः परावरः** अथवा सर्वातिशायी होने से जो पर है वही ज्ञानी भक्तों को सर्वविध सुलभ होने से अवर है- **परश्च असौ अवरः इति परावरः** अथवा परावरशरीरक सर्वात्मा ब्रह्म परावर शब्द का अर्थ है।

मन्त्र में आए दृष्ट (दर्शन) पद का अर्थ है- साक्षात्कार (प्रत्यक्ष या दर्शन)रूपता को प्राप्त निदिध्यासनात्मक ज्ञान। हृदय का अर्थ है- मन, उसकी ग्रन्थियाँ रागद्वेषादि हैं, वे ग्रन्थि (गाँठ)के समान छोड़ने में कठिन होने से और साक्षात्कारात्मक ज्ञान में प्रवृत्ति का प्रतिबन्धक होने से ग्रन्थि कहे जाते हैं और मन के सम्बन्ध के कारण होने से मन की ग्रन्थि कहे जाते हैं। श्रुतप्रकाशिका व्याख्या के अनुसार हृदयस्थान में रहने वाली जीवात्मा भी हृदय कही जाती है- **हृदयशब्दः तत्स्थजीवपरः**(श्रु. प्र.1.1.1) और **हृत्स्थानम् अयति** (श्रु.प्र.1.1.1) इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी हृदय शब्द का अर्थ जीवात्मा होता है, उसका अचेतन प्रकृति के साथ सम्बन्ध हृदयग्रन्थि कहलाता है-**तस्य ग्रन्थिः प्रकृतिसम्बन्धः** (श्रु.प्र.1.1.1)।

परावर परमात्मा का दर्शन (दर्शनसामानाकार ज्ञान) होने पर रागादि दोष दूर हो जाते हैं, मोक्ष के विरोधी सभी प्रकार के संशय निवृत्त हो जाते हैं। यहाँ संशय शब्द विपर्यय का भी बोधक है, इससे देहात्मबुद्धिरूप तथा स्वतन्त्रात्मबुद्धिरूप अविद्या का भी ग्रहण होता है। संशय के साथ विपर्ययज्ञानरूप अविद्या भी निवृत्त हो जाती है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि स्थूल रागादि तथा संशयादि साधनकाल में पहले ही निवृत्त हो जाते हैं किन्तु सूक्ष्म वासनारूप से बने रहते हैं। इस मन्त्र में ब्रह्मसाक्षात्कार से उनकी ही निवृत्ति कही है, रागादि वृत्तियों के रहते तो

निदिध्यासनरूप साधन ही निष्पन्न नहीं हो सकता। ब्रह्म के प्रत्यक्षज्ञान से साधक के पुण्यपापात्मक सभी कर्म समाप्त हो जाते हैं। मोक्ष के विरोधी रागादि तथा संशयादि के कारण ये ही कर्म हैं, कर्म नष्ट होने पर उनके कार्य रागादि तथा संशयादि भी नष्ट हो जाते हैं।

**शंका**- प्रस्तुत मन्त्र में **क्षीयन्ते चास्य कर्माणि** इस प्रकार बहुवचन के प्रयोग से ब्रह्मसाक्षात्कार से सभी कर्मों का नाश कहा जाता है किन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराण में **नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि** (ब्र.वै.पु. 2. 37.17) इस प्रकार भोग के विना कर्मों का नाश न होना वर्णित है, अतः दोनों वचन विरुद्ध प्रतीत होते हैं।

**समाधान**- उक्त वचनों में कोई विरोध नहीं है क्योंकि पुराण वचन प्रारब्धकर्म के विषय में है और श्रुतिवचन प्रारब्धेतर कर्म के विषय में है। विना भोगे प्रारब्ध कर्म का अनेकों कल्पों में भी नाश नहीं होता,, यह पुराणवचन का अर्थ है और ब्रह्मदर्शन से प्रारब्धेतर सभी कर्म निवृत्त हो जाते हैं, यह श्रुतिवाक्य का अर्थ है। **तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोः** (ब्र.सू. 4.1.13) इस सूत्र के श्रीभाष्य में कहा है कि पुण्यपापरूप कर्म के विनाश का अर्थ है- फल देने के लिए उत्पन्न हुई कर्म की शक्ति का विनाश- **अघस्य विनाशकरणमुत्पन्नायाः तच्छक्तेर्विनाशकरणम्।** (श्रीभा. 4.1.13) वह शक्ति परमात्मा की अप्रसन्नता ही है। सांसारिक सुखरूप फल भी भगवान् की अप्रसन्नता से प्राप्त होते हैं, उसकी निवृत्तिरूप कर्मनाश होने पर मोक्ष की प्राप्ति अवश्यम्भावी है।

*पूर्वोक्त ब्रह्मस्वरूप को जिज्ञासु की मति में स्थिर करने के लिए पुनः 3 मन्त्रों से प्रतिपादन करते हैं-*

**हिरणमये परे[1] कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।**
**तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः॥10॥**

**अन्वय**

हिरणमये कोशे परे यत् विरजं निष्कलं ब्रह्म। तत् शुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः, तत् आत्मविदः विदुः।

---

**टिप्पणी**- 1. अत्र 'पुरे' इति पाठान्तरः।

**अर्थ**

**हिरण्मये**- स्वप्रकाश या आकर्षक **कोशे**- कोश के समान **परे**- परमपद में **यत्**- जो **विरजम्**- त्रिगुणातीत **निष्कलम्**- अवयवरहित **ब्रह्म**- ब्रह्म है। **तत्**- वह **शुभ्रम्**- दोषरहित (और) **ज्योतिषाम्**- प्रकाशक इन्द्रियाादि का भी **ज्योतिः**- प्रकाशक है, **तत्**- उसे **आत्मविदः**- ब्रह्मवेत्ता **विदुः**-जानते हैं।

**व्याख्या**

**ब्रह्मस्वरूप**

श्रुति परमपद त्रिपादविभूति को स्वप्रकाश[1] या आकर्षक होने से हिरण्मय कहती है और उसे सर्वोत्कृष्ट पदार्थ ब्रह्म की उपलब्धि का स्थान होने से कोश कहती है। 'विरजम्' पद में रज शब्द सत्त्व और तम का भी उपलक्षण है अतः सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों से अतीत उसका अर्थ है। ब्रह्मस्वरूप निरवयव है, वह सकल दोषों से रहित है तथा सूर्यादि का भी प्रकाशक (ज्ञान के साधन) जो इन्द्रियाँ हैं, उनके भी प्रकाश का साधन है। ब्रह्मवेत्ता उस ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं।

*पूर्व मन्त्र में ब्रह्म को ज्योतियों का ज्योति कहा था, अब इसका ही विस्तार से प्रतिपादन किया जाता है-*

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।**
**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥11॥**

**अन्वय**

तत्र सूर्यः न भाति, चन्द्रतारकं न। इमाः विद्युतः न भान्ति, अयम् अग्निः कुतः। तं भान्तम् अनु एव सर्वं भाति। तस्य भासा इदं सर्वं विभाति।

---

**टिप्पणी**- 1. यह 'विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन' ग्रन्थ में त्रिपादविभूति प्रकरण में द्रष्टव्य है।

**अर्थ**

**तत्र**- हजारों सूर्य के समान प्रकाशमान दिव्यमङ्गलविग्रह से विशिष्ट परमात्मा के समक्ष **सूर्यः**- सूर्य **न**- नहीं **भाति**- प्रकाशित होता है। **चन्द्रतारकम्**- चन्द्रमा और तारे **न**- प्रकाशित नहीं होते हैं! **इमाः**- ये **विद्युतः**- विद्युत भी **न**- नहीं **भान्ति**- प्रकाशित होती (तो) **अयम्**- यह **अग्निः**- अग्नि **कुतः**- कैसे प्रकाशित हो सकती है? **तम्**- उस परमात्मा के **भान्तम्**- प्रकाशित होने के **अनु**- पश्चात् **एव**- ही **सर्वम्**- सब **भाति**- प्रकाशित होता है। **तस्य**- परमात्मा के **भासा**- प्रकाश से **इदम्**- यह **सर्वम्**- सब **विभाति**- प्रकाशित होता है।

**व्याख्या**

**ज्योतियों का ज्योति**

परमात्मा ज्ञानस्वरूप है। दीप्ति (प्रकाशित होना, चमकना) अर्थ वाली भा धातु से भाति शब्द बनता है। सूर्य, चन्द्रादि के समान नेत्रों से दृश्यमान प्रकाश (दीप्ति) परमात्मस्वरूप का नहीं होता, वह तो उनके श्रीविग्रह का होता है। परमात्मा का हजारों सूर्य के समान दिव्यमङ्गलविग्रह प्रकाशित होने पर सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्र और तारे भी प्रकाशित नहीं होते, अत्यन्त दीप्तिमान नभस्थ बिजलियाँ भी प्रकाशित नहीं होतीं तो यह अग्नि कैसे प्रकाशित हो सकती है? अर्थात् उनके दिव्यमङ्गलविग्रह की दीप्ति का साक्षात्कार होने पर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारे, विद्युत और अग्नि का प्रकाश अभिभूत (तिरोहित) हो जाता है। आकाश में यदि सहस्रों सूर्य की प्रभा का एक साथ उदय हो जाए तो वह उस परमात्मा की प्रभा के समान शायद हो- **दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः** (गी.11.12)।। इस प्रकार गीता में भी श्रीविग्रह की दीप्ति को हजारों सूर्य से बढ़कर कहा है। वह स्वयं निरतिशय प्रकाशमान है, उसके दर्शन के लिए सूर्यादि के प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती, रात्रि में भी उसके अतिभव्य दर्शन होते हैं और उसकी अङ्गकान्ति से ही अन्य वस्तुएं प्रकाशित होती दिखायी देती हैं। वह असीम तेज वाला है, उसके समान तेज किसी का

भी नहीं है। भगवद्दर्शनकाल में ऐसा अनुभव होता है कि सभी दिशाओं में प्रकाश का प्रवाह बह रहा है, उसके मध्य श्रीभगवान् का लोकोत्तरसुन्दर, निखिलभुवनमोहन श्रीविग्रह प्रकाशित हो रहा है, इसका तात्पर्य यह है कि कान्तिमण्डल से युक्त श्रीविग्रह से प्रवाह के रूप में तेजोमयी आभा निकलती रहती है, उसके मध्य भगवान् के अद्वितीय सुन्दर श्रीविग्रह के दर्शन होते हैं। उसके प्रकाश से सूर्यादि का प्रकाश अभिभूत होने से नगण्य हो जाता है। कवि कालिदास का उल्लेख करने पर अन्य कवि अकवि हैं, इस कथन के समान भी प्रकाशमान दिव्यमङ्गलविग्रहविशिष्ट परमात्मा का उल्लेख करने पर सूर्यादि प्रकाशित नहीं होते हैं, यह कथन संभव होता है अतः वह अत्यन्त भास्वररूप वाला है। परमात्मा का दिव्यमङ्गलविग्रह प्रकाशित होने के पश्चात् सूर्यादि का प्रकाश होता हैं- **तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्।** इस प्रकार पौर्वापर्य होने से कार्यकारणभाव भी ज्ञात होता है, परमात्मा का प्रकाश कारण है और सूर्यादि का प्रकाश कार्य है। परमात्मा के चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ- **चक्षोस्सूर्योऽजायत** (पु.सू.12) इस प्रकार जीव के चक्षु के अधिष्ठाता देवता सूर्य की परमात्मा के चक्षु से उत्पत्ति कही जाती है। सूर्यादि के तेज के उपादान द्रव्य जो सूर्यादि हैं, उनका भी कारण परमात्मा है इसलिए परमात्मा के तेज को सूर्यादि के तेज का कारण कहा जाता है। सूर्यमण्डल के मध्य में कमनीयदीप्तिवाला परमात्मा दिखाई देता है- **अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते** (छां.उ.1.6.6)। इस प्रकार सूर्यमण्डल में विद्यमान परमात्मा का वर्णन किया जाता है, उससे अनुगृहीत होकर सूर्य और उसके अधीन प्रकाशवाले चन्द्रादि अन्य सभी प्रकाशित होते हैं। जो तेज सूर्य में विद्यमान जो तेज समग्र जगत् को प्रकाशित करता हैं। जो तेज चन्द्रमा में है और जो तेज अग्नि में है, उस सब को मुझ परमात्मा का ही समझो- **यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्** (गी.15.12)। जीव भगवान् की आराधना करके ही सूर्य, चन्द्रादि देवता बनते हैं। आराधना से आराधित भगवान् ही उनको तेज प्रदान करते हैं, इसलिए उनका तेज स्वाभाविक नहीं है, वह तो वस्तुतः भगवान् का ही है, इसीलिए यह श्रुति कहती है - परमात्मा के प्रकाश से सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे और

अग्नि का प्रकाश होता है- **तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।** जैसे अलंकार (आभूषण) धारण में रुचि रखने वाला मनुष्य कदाचित् दूसरे के द्वारा प्रदत्त अलंकार से अलंकृत होता है, वैसे ही परमात्मा के द्वारा प्रदत्त प्रकाश से सूर्यादि प्रकाशित होते हैं।

**ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।**
**अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥12॥**

**॥ इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ॥**

**अन्वय**

पुरस्ताद् इदम् अमृतं ब्रह्म एव। पश्चात् ब्रह्म। दक्षिणतः ब्रह्म च उत्तरेण। अधः ऊर्ध्वं च प्रसृतम् इदं विश्वं ब्रह्म एव च इदं वरिष्ठम्।

**अर्थ**

**पुरस्ताद्**- सम्मुख दृश्य **इदम्**- जगत् **अमृतम्**- अमृत के समान निरतिशय भोग्य **ब्रह्म**- ब्रह्म **एव**- ही है। **पश्चात्**- पश्चिम भाग में दृश्य जगत् **ब्रह्म**- ब्रह्म ही है। **दक्षिणतः**- दक्षिण दिशा में दृश्य जगत् **ब्रह्म**- ब्रह्म ही है **च**- और **उत्तरेण**- उत्तर दिशा में दृश्य जगत् ब्रह्म ही है। **अधः**- नीचे की ओर **ऊर्ध्वम्**- ऊपर की **च**-और ईशानादि सभी कोणों में **प्रसृतम्**- फैला हुआ **इदम्**- यह **विश्वम्**- जगत् **ब्रह्म**- ब्रह्म **एव**- ही है **च**- और (सर्वात्मा होने से) **इदम्**- ब्रह्म **वरिष्ठम्**- अत्यन्त वरणीय है।

**व्याख्या**

**सब का अन्तरात्मा**

सभी दिशाओं में जो कुछ अनुभव में आता है, वह सब ब्रह्म ही है। घटपटादिरूप जगत् ब्रह्म से अपृथक्सिद्ध है, उसके बोधक शब्द उन पदार्थों का बोध कराते हुए उनके अन्तरात्मा ब्रह्म का भी बोध कराते हैं इसलिए चेतनाऽचेतनरूप निखिल प्रपञ्च को ब्रह्म कहा जाता है। अज्ञानी व्यक्ति ब्रह्म के आश्रित रहने वाले विशेषणभूत घट, पटादि पदार्थों को ही देखता है, अन्तरात्मा ब्रह्म को नहीं देखता किन्तु ब्रह्मवित् उन पदार्थों

को ब्रह्मपर्यन्त देखता है अर्थात् पदार्थों को देखने के साथ ही उनके अन्तरात्मा ब्रह्म को भी देखता है, वह अन्य पदार्थों को अप्रधान (विशेषण) रूप से तथा ब्रह्म को प्रधान (विशेष्य) रूप से देखता है। ब्रह्म से पृथक् कुछ भी न होने से और सबका अन्तरात्मा ब्रह्म होने से सब ब्रह्म ही है। सबका अन्तरात्मा होने से ही ब्रह्म अत्यन्त वरणीय है।

## तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः

**हरिः ओम्**

**[1]द्वा[2] सुपर्णा[3] सयुजा[4] सखाया[5] समानं वृक्षं परिषस्वजाते।**
**तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति[6]॥1॥**

### अन्वय

सयुजा सखाया सुपर्णा द्वा समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोः अन्यः स्वादु पिप्पलं अत्ति। अन्यः अनश्नन् अभिचाकशीति।

### अर्थ

**सयुजा**[7]- समान गुण वाले **सखाया**- साथ रहने वाले **सुपर्णा**- पक्षी के समान **द्वा**- जीव और ईश्वर **समानम्**- एक **वृक्षम्**- शरीर में **परिषस्वजाते**- रहते हैं। **तयोः**- उन दोनों में **अन्यः**- जीव **स्वादु**- परिपक्व **पिप्पलम्**- कर्मफल को **अत्ति**- भोगता है (और) **अन्यः**- ईश्वर **अनश्नन्**- कर्मफल न भोगते हुए **अभिचाकशीति**- खूब प्रकाशित रहता है।

---

**टिप्पणी**- 1. यह मन्त्र ऋग्वेदसंहिता(2.1.7) और श्वेताश्वतरोपनिषत्(4.6) में भी मिलता है।

2.3.4.5. द्वा, सुपर्णा, सयुजा, सखाया इति स्थलेषु **सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः** (अ.सू.7.1.39) इति सूत्रेण औ इत्यस्य स्थाने 'आ' आदेशः।

6. अभिपूर्वक काशृ दीप्तौ, यङ्लुगन्तप्रयोगोऽयम्।

7. **सयुजा**-युज्यत इति युक्। युक्शब्दो गुणपरः। समानगुणकः सयुक् इति व्यासार्यैर्विवृतत्वात् । सयुजौ समानगुणकौ, अपहतपाप्मत्वादिगुणैः परस्परसमानौ (प्रका.)।

**व्याख्या**

**जीवात्मा और परमात्मा का भेद**

यह आत्मा पापरहित, जरारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है- **य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः।** (छां.उ.8.7.1) इस प्रकार प्रजापतिविद्या मे अपहतपाप्मत्वादि जीवात्मा के गुण कहे गये हैं और **एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः।** (छां.उ.8.1.5) इस प्रकार दहरविद्या में वे ब्रह्म के गुण कहे गये हैं। अपहतपाप्मत्वादि दोनों के समान गुण हैं किन्तु बद्धावस्था में अनादि कर्मात्मिका अविद्या से जीव के गुण तिरोहित हो जाते हैं और ब्रह्म के गुण कभी भी तिरोहित नहीं होते। जीव और ब्रह्म दोनों साथ रहने वाले सखा हैं और वृक्ष के समान छेदनयोग्य एक शरीर में रहते हैं। वृक्ष में पक्षी निवास करते हैं। शरीररूप वृक्ष में निवास करने वाले ये दोनों पक्षी के समान हैं। एक शरीर नष्ट हो जाने पर दोनों दूसरे शरीर में रहने चले जाते हैं। उनमें एक जीव कर्म के परिपक्व फल को भोगता है और दूसरा ईश्वर कर्मफल न भोगते हुए प्रकाशित होता रहता है। यह श्रुति जीव और ब्रह्म के भेद का स्पष्टरूप से प्रतिपादन करती है, अतः दोनों की स्वरूप-एकता का प्रतिपादक सिद्धान्त श्रुतिविरुद्ध है।

**शंका**- प्रस्तुत **द्वा सुपर्णा** मन्त्र को आत्मा और ब्रह्म का बोधक मानना उचित नहीं है क्योंकि यह मन्त्र अन्तःकरण और आत्मा का बोधक है। पैङ्गिरहस्य ब्राह्मण में इस मन्त्र का ऐसा ही व्याख्यान किया गया है। उन दोनों में एक परिपक्व कर्मफल को भोगता है, यह सत्त्व है। दूसरा न भोगते हुए प्रकाशित होता है, यह ज्ञाता है, वे दोनों सत्त्व और क्षेत्रज्ञ हैं- **तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति सत्त्वम्। अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीतीति ज्ञः तावेतौ सत्त्वक्षेत्रज्ञौ (पै.ब्रा.)**। इनमें प्रथम वाक्य सत्त्व अर्थात् बुद्धि (अन्तःकरण) का बोधक है और द्वितीय वाक्य ज्ञाता क्षेत्रज्ञ का बोधक है अतः सत्त्व और क्षेत्रज्ञ शब्द जीव और ब्रह्म के बोधक नहीं हो सकते क्योंकि वे दोनों बुद्धि और आत्मा के बोधकरूप से प्रसिद्ध हैं।

जिसके द्वारा स्वप्न देखता है, वह यह सत्त्व है और जो शरीर में रहने वाला उपद्रष्टा है, वह क्षेत्रज्ञ है, इस प्रकार ये दोनों बुद्धि और क्षेत्रज्ञ हैं – **तदेतत् सत्त्वम्, येन स्वप्नं पश्यति। अथ योऽयं शारीरं उपद्रष्टा, स क्षेत्रज्ञः, तावेतौ सत्त्वक्षेत्रज्ञौ।** (पै.ब्रा.) इस प्रकार पैङ्गि श्रुति ही सत्त्व और क्षेत्रज्ञ शब्दों का क्रम से अन्तःकरण और आत्मा अर्थ करती है। **येन पश्यति** इस प्रकार करणत्व की प्रतीति होने से सत्त्व अन्तःकरण है और स्वप्न का द्रष्टा होने से क्षेत्रज्ञ आत्मा है।

**समाधान**- उक्त शंका उचित नहीं है क्योंकि प्रस्तुत मुण्डक मन्त्र के समान अर्थ वाला **समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः** (मु.उ.3.1.2) यह अग्रिम मन्त्र भी जीव और ब्रह्म का ही बोधक है। **समानं वृक्षं परिषस्वजाते** (मु.उ.3.1.1) **समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः** (मु.3.1.2) इस प्रकार दोनों का एक अर्थ ज्ञात होता है। इस मन्त्र में आए पुरुष शब्द का जीवात्मा ही अर्थ है क्योंकि पुरुष शब्द का अर्थ अन्तःकरण होता ही नहीं। जीव अर्थ लेने पर ही मन्त्र में पठित 'शोचति' 'पश्यति' और 'वीतशोकः' इन पदों का अर्थ संगत होता है। शोचति का अर्थ है- दुःख का अनुभव (प्रकाश) करना। चेतन जीवात्मा ही दुःख का अनुभव कर सकता है, अचेतन अन्तःकरण नहीं कर सकता। पश्यति का अर्थ है- दर्शन(अनुभव)। अचेतन बुद्धि दर्शन नहीं कर सकती। दुःख का दर्शन करने वाला जीव ही दुःखरहित होने के लिए ब्रह्म का दर्शन करता है। वीतशोक का अर्थ है- दुःखरहित। जो दुःखी होता है, वही ब्रह्मदर्शन करके दुःखरहित होता है। अचेतन अन्तःकरण अर्थ होने पर यह सब संभव नहीं अतः पुरुष शब्द का अर्थ चेतन जीव ही है। ईश शब्द का अर्थ जीव से भिन्न ब्रह्म है क्योंकि उसका ज्ञान वीतशोक होने का हेतु है।

समान अर्थ वाला अग्रिम मन्त्र होने से ही यह **द्वा सुपर्णा** मन्त्र जीवात्मा और ब्रह्म का बोधक है, ऐसी बात नहीं अपितु प्रस्तुत मन्त्र में **स्वाद्वत्ति** और **अनश्नन्नन्यः** इन वाक्यों के प्रयोग से भी यह मन्त्र जीवात्मा और ब्रह्म का बोधक सिद्ध होता है, इनमें प्रथम वाक्य से भोक्ता जीव और द्वितीय से अभोक्ता ब्रह्म कहा जाता है। जिस प्रकार दर्शनकर्तृत्व और श्रवणकर्तृत्व आदि धर्म अचेतन चक्षु, श्रोत्र आदि

करणों के नहीं होते, उसी प्रकार अन्तःकरण भी करण होने से उसका भोक्तृत्व संभव नहीं और वृक्ष शब्द से कही गयी देह में रहते समय जीव का अभोक्तृत्व भी कभी संभव नहीं क्योंकि साक्षात्कार के अनन्तर भी ज्ञानी पुरुष प्रारब्धजन्य सुख, दुःख का भोक्ता होता ही है।

**शंका**- ऐसी स्थिति में **द्वा सुपर्णा** मन्त्र का व्याख्यान करने वाली पैङ्गिश्रुति में पठित सत्त्व और क्षेत्रज्ञ शब्दों के क्या अर्थ है?

**समाधान**- सत्त्व का अर्थ बद्ध जीव है। **द्रव्याऽसुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु** (अ.को.3.3.213) इस कोशवचन के अनुसार सत्त्व शब्द जन्तु का बोधक है। **प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तुजन्युशरीरिणः** (अ.को.1.5.30) इस कोश **वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्** (रघु.म. 2.8) इस रघुवंश महाकाव्य और **न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात् त्रिभिर्गुणैः** (गी.18.40) इस गीतावचन से सत्त्व का चेतन जीव अर्थ सिद्ध है। ब्राह्मणवाक्य में पठित क्षेत्रज्ञ शब्द का अर्थ ब्रह्म है। जैसे अन्य अर्थों के बोधक आकाश, प्राणादि शब्द अर्थापत्ति से परमात्मा के बोधक होते हैं, वैसे ही यह क्षेत्रज्ञ शब्द भी परमात्मा का बोधक है। **विष्णोर्नाम सहस्रं मे** (वि.स.ना.12) इस प्रकार विष्णु के सहस्र नामों को कहना आरम्भ करके **क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च** (वि.स.ना.15) यहाँ पर अक्षर परमात्मा अर्थ में क्षेत्रज्ञ शब्द का प्रयोग किया गया है। क्षेत्रज्ञ शब्द के **क्षेत्रं (शरीरं) जानाति इति** इस यौगिक अर्थ की परमात्मा मे ही पूर्णता है क्योंकि वही क्षेत्र के भीतरी सभी सूक्ष्मतम अंशों को भी जानता है।

इसके पश्चात् तीन गुणों से रहित श्रेष्ठ द्विज अनायास ही प्राकृत गुणों से रहित क्षेत्रज्ञ परमात्मा में प्रवेश करते हैं। तुम सबके निवासस्थान परमात्मा वासुदेव को क्षेत्रज्ञ जानो - **ततस्त्रैगुण्यहीनास्ते परमात्मानमञ्जसा॥ प्रविशन्ति द्विजश्रेष्ठाः क्षेत्रज्ञं निर्गुणात्मकम्। सर्वावासं वासुदेवं क्षेत्रज्ञं विद्धि तत्त्वतः॥** (म.भा.शां.344-17-18) सम्पूर्ण विश्व ही उनका मस्तक, भुजा, पैर, नेत्र और नासिका है। वह स्वच्छन्द विचरण करने वाला एक परमात्मा सभी क्षेत्रों में सुखपूर्वक विचरण करता है। यह योगात्मा परमात्मा क्षेत्र नाम वाले शरीरों को और उनके कारण शुभाशुभ कर्मों को जानता है, इसलिए क्षेत्रज्ञ कहा जाता है- **विश्वमूर्धा विश्वभुजो**

**विश्वपादाक्षिनासिकः। एकश्चरति क्षेत्रेषु स्वैरचारी यथासुखम्॥ क्षेत्राणि हि शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभम्। तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते॥** (म.भा.शां.प.351.5-6) इस प्रकार महाभारत के शान्तिपर्व में भी परमात्मा का वाचक क्षेत्रज्ञ शब्द उपलब्ध होता है।

**येन स्वप्नं पश्यति** इस पूर्वोक्त पैङ्गिरहस्य ब्राह्मणवचन में 'येन' यहाँ पर इत्थंभाव[1] में तृतीया विभक्ति हुई है। जिससे विशिष्ट परमात्मा स्वप्न को देखता है, यह अर्थ उत्पन्न होता है, तब कठिनता (कठोरता) वाला परमात्मा धारण करता है- **काठिन्यवान् यो बिभर्ति** (वि.पु.1.14.28) जैसे यहाँ पृथिवी के द्वारा परमात्मा का काठिन्य कहा जाता है, वैसे ही स्वप्नद्रष्ट्रत्व जीव के द्वारा परमात्मा का विशेषण कहा जाता है। उसी ब्राह्मणवचन में प्रयुक्त शारीर शब्द **तस्यैष एव शारीर आत्मा** (तै.उ.2.6) इस तैत्तिरीयश्रुति के समान स्वव्यतिरिक्त समस्त चेतनाऽचेतन- शरीरक परमात्मा में संभव होता है। उपद्रष्टा शब्द से कहा गया निरुपाधिक द्रष्ट्रत्व भी उसी में सभव है। इस प्रकार शारीर और उपद्रष्टा इन दो पदों के प्रयोग से यहाँ क्षेत्रज्ञ शब्द का अर्थ परमात्मा ही होता है इसलिए **द्वा सुपर्णा** यह मन्त्र जीव और ब्रह्म का ही बोधक है। पैङ्गिश्रुति में प्रयुक्त सत्त्व और क्षेत्रज्ञ शब्द भी उन्हीं के बोधक हैं। जैसे आत्मा शब्द के जीवात्मा और परमात्मा दोनों अर्थ होते हैं, वैसे ही क्षेत्रज्ञ शब्द के भी वे दोनों अर्थ होते हैं। सत्त्व शब्द का जीव अर्थ ऊपर सप्रमाण प्रदर्शित किया गया है अतः शब्दसाम्य की दृष्टि से पैङ्गिश्रुति में आए सत्त्व और क्षेत्रज्ञ शब्द का बुद्धि और जीव अर्थ करना वेदान्तप्रक्रिया से विरुद्ध है।

श्रीशंकराचार्य ने **विशेषणाच्च** (ब्र.सू.1.2.12) इस ब्रह्मसूत्र के भाष्य में **द्वा सुपर्णा** मन्त्र का व्याख्यान करते हुए पहले जीवात्मपरक और परमात्मपरक अर्थ किया। इसके पश्चात् बुद्धि और क्षेत्रज्ञ परक अर्थ किया। इनमें प्रथम अर्थ वृत्तिकारसम्मत और द्वितीय अर्थ शांकरसिद्धान्तसम्मत माना जाता है। यहाँ इसी द्वितीय अर्थ की असंगति प्रस्तुत की गयी है।

---

**टिप्पणी**- 1. इत्थंभूतलक्षणे (अ.सू.2.3.21) इति सूत्रेण।

**शंका**- मुण्डकोपनिषद् में **ब्रह्मैवेदं विश्वम्** (मु.उ.2.2.12) इत्यादि प्रकार से विश्व का ब्रह्म से अभेदनिर्देश होने के कारण **द्वा सुपर्णा** मन्त्र का जीव और ब्रह्मपरक अर्थ करना उचित नहीं है।

**समाधान**- ऐसी शंका करना व्यर्थ है क्योंकि जिस मत में विश्व मिथ्या है, उस मत में उसका ब्रह्म से अभेद भी कैसे कहा जा सकता है? वस्तुतः विश्व मिथ्या न होने पर ही उसका ब्रह्म से अभेद कहा जा सकता है, इसके लिए बृहदारण्यकश्रुति विश्व और ब्रह्म में शरीर-आत्मभाव सम्बन्ध कहती है, इसके द्वारा अभेद का निरूपण सविशेषाद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों से समझना चाहिए।

**[1]समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।**
**जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥2॥**

**अन्वय**

समाने वृक्षे निमग्नः पुरुषः अनीशया मुह्यमानः शोचति। यदा जुष्टं अन्यम् ईशम् अस्य इति महिमानम् पश्यति वीतशोकः।

**अर्थ**

परमात्माके संकल्प से तिरोहित ज्ञानानन्दगुण वाला **समाने**- एक **वृक्षे**- वृक्ष के तुल्य छेदनयोग्य इस शरीर में (परमात्मा के साथ ही) **निमग्नः**- रहने वाला **पुरुषः**- जीवात्मा **अनीशया**- भोग्य प्रकृति के संसर्ग से ('मैं स्थूल हूँ' 'मैं कृश हूँ' 'मैं देवता हूँ' 'मैं मनुष्य हूँ' 'यह वस्तु मेरी है' इत्यादि प्रकार से) **मुह्यमानः**- मोहग्रस्त होकर **शोचति**- दुःखी होता रहता है। **यदा**- जब **जुष्टम्**- उपासना से प्रसन्न हुए **अन्यम्**- अपने से भिन्न **ईशम्**- परमात्मा का (और) **अस्य**- इसकी **इति**[2]-निखिलजगन्नियमनरूप **महिमानम्**- महिमा का **पश्यति**- साक्षात्कार करता है, (तब) **वीतशोकः**- दुःखरहित हो जाता है।

---

**टिप्पणी**- 1 मन्त्रोऽयं श्वेताश्वेतरे (4.7) अपि दृश्यते।

2. इतिशब्दो बुद्धिस्थप्रकारपरः। ईशशब्दश्रवणान्नियमनरूपप्रकारो बुद्धिस्थ इति भावः(श्रु.प्र.1.3.4)।

**व्याख्या**

## आत्मा से भिन्न परमात्मा के साक्षात्कार से मोक्ष

वृक्ष के समान विनाशी इस शरीर में परमात्मा के साथ जीवात्मा भी रहता है। ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा ज्ञानानन्द गुण वाला और परमात्मा का शेष भी है । आत्मा के ज्ञानानन्द गुण, परमात्मशेषत्व, धार्यत्व, नियाम्यत्व और अपहतपाप्मत्वादि स्वाभाविक धर्म उसके ही अनादि कर्मरूप अज्ञान के कारण परमात्मा के संकल्प से तिरोहित होते हैं- **पराभिध्यानात्तु तिरोहितम्** (ब्र.सू.3.2.4)। परमात्मसंकल्प से होने वाला वह तिरोधान भी अचेतन देह के सम्बन्ध से होता है- **देहयोगाद् वा सोऽपि** (ब्र.सू.3.2.5)। वह सृष्टिकाल में शरीररूप में उपस्थित अचेतन प्रकृति के संयोग से और प्रलयकाल में नामरूपविभाग से रहित सूक्ष्म अचेतन प्रकृति के संयोग से होता है। इस प्रकार एक ही शरीर में परमात्मा के साथ रहने वाले जीवात्मा के ज्ञानानन्दगुण और परमात्मशेषत्वादि धर्म तिरोहित रहते हैं। प्रकृति सृष्टिकाल में देह, इन्द्रिय और विषयरूप से जीव के समक्ष उपस्थित होती है। तिरोहितस्वरूप वाला जीव 'मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ' 'मैं सुखी (सुखरूप आत्मानुभव और परमात्मानुभव करने वाला) हूँ' इस प्रकार अपने को नहीं जानता अपितु 'मैं मोटा हूँ', 'मैं पतला हूँ' 'मैं देवता हूँ' 'मैं मनुष्य हूँ' 'यह वस्तु मेरी है' 'तुम्हारी नहीं है' इत्यादि प्रकार से मोहित होता है, इसलिए शोक करता है। विपरीत ज्ञान को मोह कहते हैं- **मोहः विपरीतज्ञानम्** (गी.रा.भा.14.13)। आत्मा न तो स्थूल होती है और न ही कृश। स्थूल और कृश तो देह होती है। आत्मा न तो देवता है और न ही मनुष्य। देहविशेष के संयोग से उसे देवता और मनुष्य कहते हैं, इसलिए मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ, इस प्रकार आत्मा को स्थूल और कृश समझना विपरीत ज्ञान अर्थात् मोह है। इसी प्रकार आत्मा को देवता और मनुष्य समझना भी मोह है। आत्मा स्वाभाविकरूप से परमात्मा का शेष है। परमात्मा को छोड़कर उसकी कोई भी भोग्य वस्तु स्वाभाविक नहीं है। वह कर्मरूप अविद्या के कारण सांसारिक वस्तुओं को अपनी मानता है। ये वस्तुएं अपनी न होने से इन्हें अपना समझना मोह है और मोह होने से ही दुःख प्राप्त करता है।

आत्मा धार्य, नियाम्य और शेष है तथा परमात्मा उसका धारक

नियन्ता और शेषी है। जब जीवात्मा उपासना से प्रसन्न हुए अपने से भिन्न परमात्मा का और उसके सकलजगन्नियन्तृत्व रूप महिमा का साक्षात्कार करता है तब दुःखरहित हो जाता है।

'**अनीशया**- असमर्थ होने के कारण **मुह्यमानः**- मोहित होकर **शोचति**- दुःखी होता है। संसार सागर से अपना उद्धार करने में असमर्थ होने के कारण उसे करने में समर्थ अपने से भिन्न परमात्मा का और उद्धार करना रूप उसकी महिमा का साक्षात्कार करके दुःखरहित हो जाता है' ऐसा भी मन्त्र का अर्थ होता है। प्रस्तुत मन्त्र जीव से भिन्न सविशेष ब्रह्म के ज्ञान से मोक्ष का प्रतिपादन करता है अतः निर्विशेष ब्रह्म का तथा जीव और ब्रह्म के ऐक्यज्ञान से मोक्ष का प्रतिपादन करने वाला मत श्रुतिसम्मत सिद्ध नहीं होता।

*पूर्वमन्त्र में परमात्मसाक्षात्कार से शोकनिवृत्ति कही गयी, अब मुक्तावस्था में विद्यमान आत्मा के स्वरूप को कहते हैं-*

**यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।**
**तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥3॥**

**अन्वय**

यदा पश्यः रुक्मवर्णम् ईशं पुरुषं कर्तारं ब्रह्मयोनिं पश्यते। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यम् उपैति।

**अर्थ**

**यदा**- जब **पश्यः**- ब्रह्मदर्शी **रुक्मवर्णम्**- स्वर्ण के समान देदीप्यमान दिव्यमङ्गलविग्रह से युक्त **ईशम्**- जगत् के नियन्ता **पुरुषम्**- पुरुष शब्द के वाच्य **कर्तारम्**- जगत के निमित्तकारण(और) **ब्रह्मयोनिम्**- उपादान कारण ब्रह्म का **पश्यते**- साक्षात्कार करता है, **तदा**- तब **विद्वान्**- ब्रह्मदर्शी **पुण्यपापे**- पुण्य-पाप को **विधूय**- छोड़कर **निरञ्जनः**- प्रकृति के सम्बन्ध से रहित होकर (ब्रह्म के साथ) **परमम्**- परम **साम्यम्**- समता को **उपैति**- प्राप्त करता है।

**व्याख्या**

## मुक्तात्मा की परमात्मा से परम समता

परमात्मा का दिव्यमंगलविग्रह[1] अप्राकृत है। सर्वात्मा ब्रह्म सबके भीतर प्रविष्ट होकर शासन करने वाला है- **अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा** (तै.आ.3.11.3), यह श्रुति और बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण (बृ.उ.3.7) की श्रुतियाँ उसे सकल जगत् का नियन्ता (शासक) कहती हैं। वह जगत का निमित्तकारण है और उपादान कारण भी । यहाँ **ब्रह्म एव योनिः** इस प्रकार कर्मधारय समास मानकर ब्रह्मयोनि शब्द का उपादानकारण ब्रह्म अर्थ किया गया, अब **ब्रह्मणः योनिः ब्रह्मयोनिः** इस प्रकार षष्ठीतत्पुरुष समास मानने पर **ब्रह्मयोनिम्**- अव्याकृत का उपादान कारण, ऐसा अर्थ होता है। **तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते** (मु.उ.1.1.10) इस प्रकार पूर्व में ब्रह्म से ब्रह्म की उत्पत्ति कही गयी। इस श्रुति में ब्रह्म का अर्थ है- अव्याकृत अर्थात् नामरूपविभाग के अभाववाला सूक्ष्मचेतनाऽचेतन। इसका उपादान ब्रह्म प्रस्तुत श्रुति(3.1.3)में ब्रह्मयोनि शब्द से कहा गया है अथवा **कर्तारम्**- जगत् के उत्पादक (और) **ब्रह्मयोनिम्**- चतुर्मुख ब्रह्मा के भी कारण। जो परमात्मा प्राणियों में सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है- **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्** (श्वे.उ.6.18) इस प्रकार श्वेताश्वतर श्रुति भी ब्रह्मा के कारण परमात्मा को कहती है। जब ब्रह्मदर्शी सुवर्ण के समान अत्यन्त देदीप्यमान दिव्यमंगलविग्रह से युक्त, जगत् के उत्पादक और नियन्ता ब्रह्मयोनि परमात्मा का साक्षात्कार करता है, तब पुण्यपाप से रहित हो जाता है। परमात्मा का साक्षात्कार होने पर ब्रह्मदर्शी के पुण्य-पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं-**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि** (मु.उ.2.2.9) ऐसा पूर्व में भी कहा गया था। सञ्चित पुण्यपापात्मक कर्म परमात्मसाक्षात्कार से नष्ट होते हैं और प्रारब्ध भोगकर नष्ट हो जाता है। जीवात्मा के ये कर्म ही प्रकृति से सम्बन्ध में हेतु होते हैं। कर्म निवृत्त होने पर प्रकृति के साथ सम्बन्ध नहीं रहता, इस सम्बन्ध से ही आत्मा के अपहतपाप्मत्वादि

---

**टिप्पणी**- 1. इसे विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन ग्रन्थ में और ईशावास्योपनिषत् के 16वें मन्त्र की तत्त्वविवेचनी व्याख्या में देखना चाहिए।

धर्म तिरोहित हो जाते हैं, उसके न रहने पर आविर्भूत हो जाते हैं, तब मुक्तात्मा की परमात्मा से परमसमता होती है। प्रस्तुत मुण्डकमन्त्र मुक्तावस्था में परमात्मा से आत्मा की परम समता का प्रतिपादन करता है, अभेद का नहीं अतः इसके द्वारा शांकर मतावलम्बियों का मोक्ष दशा में अभेदप्रतिपादन अविचारितरमणीय ही है।

**प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भव तेनातिवादी[1]।**
**आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥4॥**

**अन्वय**

सर्वभूतैः यः एषः प्राणः हि विभाति। विजानन् विद्वान् तेन अतिवादी भव। आत्मक्रीडः आत्मरतिः क्रियावान् एषः ब्रह्मविदां वरिष्ठः।

**अर्थ**

**सर्वभूतैः**- सभी प्राणियों से आश्रित(आश्रय बनाया गया) **यः**- जो **एषः**- यह **प्राणः**- परमात्मा **हि**- ही **विभाति**- विशेषरूप से प्रकाशित होता है, उसे तुम **विजानन्**- श्रवण, मनन से जानते हुए **विद्वान्**- उपासना करते हुए **तेन**- परमात्मरूप निमित्त से **अतिवादी**- अतिवादी **भव**- हो जाओ। **आत्मक्रीडः**- आत्मा में क्रीडा करने वाला **आत्मरतिः**-आत्मा में रति करने वाला **क्रियावान्**- शास्त्रविहित कर्मो को करने वाला **एषः**- यह **ब्रह्मविदाम्**- ब्रह्मज्ञानियों में **वरिष्ठः**- श्रेष्ठ होता है।

**व्याख्या**

**वरिष्ठ ब्रह्मवेत्ता**

ये सभी प्राणी परमात्मा में ही लीन होते हैं और परमात्मा से ही उत्पन्न होते हैं- **सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति, प्राणमभ्युज्जिहते** (छां.उ.1.11.5) इत्यादि प्रयोगों की भाँति प्रस्तुत मन्त्र में प्राण शब्द का अर्थ परमात्मा है। सभी प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति,

**टिप्पणी**- 1. 'भवते नातिवादी' इत्यपि पाठः दृश्यते।

लय और मोक्ष का आधार परमात्मा ही है। **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति** (तै.उ.3.1.2)। सभी प्राणी परमात्मा को आश्रय बनाकर सदा उसमें रहते हैं। पूर्वमन्त्र **अभिचाकशीति** (मु.उ.3.1.1) इस प्रकार परमात्मा का प्रकाशित होना कहता है और प्रस्तुत मन्त्र **विभाति** इस प्रकार विशेषरूप से प्रकाशित होना कहता है। जीव अनादि कर्मरूप अज्ञान के कारण संकुचित ज्ञान गुण वाला होने से देहात्मबुद्धि करके शोक करता रहता है। परमात्मा के ज्ञानगुण के संकोच का हेतु न होने से वह सदा सबका प्रकाश (ज्ञान) करता रहता है। वह सर्वज्ञ होने के साथ ही सर्वविद् भी है अर्थात् सबका विशेषरूप से प्रकाश करने वाला है। इस प्रकार 'अभिचाकशीति' का अर्थ है- असंकुचित ज्ञान गुण वाला होकर रहता है अर्थात् ज्ञानगुण से सबका प्रकाश करते हुए प्रकाशित होता है। वह सभी भूतों का आधार परमात्मा जल में स्थित कमल के पत्ते के समान निर्लेप रहकर प्रकाशित होता है। अभी आश्रित पद का अध्याहार करके **सर्वभूतैर्विभाति** का अर्थ किया गया। सर्वभूत और परमात्मा में ज्ञाप्यज्ञापक भाव है। सर्वभूत ज्ञापक हैं और परमात्मा ज्ञाप्य है, अतः सर्वभूतैः में **इत्थंभूतलक्षणे** (अ.सू.2.3.21) सूत्र से तृतीया विभक्ति मानने पर 'सभी प्राणियों से ज्ञाप्य (बोधित) परमात्मा विशेषरूप से प्रकाशित होता है।' यह अर्थ निष्पन्न होता है। सभी प्राणियों के आधार अन्तरात्मा परमात्मा को श्रवण, मनन से जानते हुए और उपासना करते हुए तुम ज्ञेय परमात्मरूप निमित्त से अतिवादी हो जाओ। जो अपने उपास्य देवता को सब से बढ़कर बोलता है, वह अतिवादी कहलाता है- **यस्तु स्वोपास्यदेवतायाः सर्वातिशायित्वं वदति, सोऽतिवादीत्युच्यते**। (प्रका.)। परमात्मा सब से बढ़कर ही है, इसलिए उपासक उसे बोलेगा तो सबसे बढ़कर ही बोलेगा। **न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते**(श्वे.उ.6.8), उसके समान और अधिक कोई नहीं है क्योंकि वह सबसे बढ़कर है। छान्दोग्य में कहा है कि जो निर्विकार ब्रह्मरूप निमित्त से अतिवाद करता है, यह ही अतिवाद करता है- **एष तु वा अतिवदति, यः सत्येनातिवदति** (छां.उ.7.16.1)। **भवते नातिवादी** पाठ मानने पर विद्वान् **अतिवादी**-अतिवादी **न**-नहीं **भवते**-होता है अर्थात् वह परमात्मा

के मिथ्या गुणों को नहीं कहता है, ऐसा अर्थ होने पर 'जो नहीं है, उसे कहना ही अतिवाद करना है।' विद्वान् तो सत्य परमात्मा और उसके सत्य गुणों को ही कहता है। माला:चन्दनादि से होने वाली प्रीति रति कहलाती है और उद्यानादि से होने वाली प्रीति क्रीडा कहलाती है- **रतिः स्रक्चन्दनादिजन्या प्रीतिः, क्रीडा उद्यानादिजन्या** (श्रु.प्र.1.3.7) **आत्मनि परमात्मनि एव क्रीडा यस्य सः आत्मक्रीडः। आत्मनि परमात्मनि एव रतिर्यस्य सः आत्मरतिः।** आत्मक्रीड और आत्मरति अर्थात् सर्वतोभावेन परमात्मा से ही प्रीति करने वाला तथा ब्रह्मविद्या (उपासना) के अङ्गरूप से विहित नित्यनैमित्तिक कर्मों को करने वाला ही ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होता है क्योंकि उन कर्मों से अन्तःकरण निर्मल होने पर ब्रह्मविद्या की निष्पत्ति होती है और विद्या की निष्पत्ति होने पर वह ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो जाता है। कर्म न करने वाले ब्रह्मविद्या में प्रवृत्त व्यक्ति की चित्तशुद्धि न होने से विद्या की निष्पत्ति नहीं होती, ऐसा होने पर वह ब्रह्मवेत्ता नहीं हो सकता। कर्मानुष्ठान से जैसे जैसे मन शुद्ध होता है, वैसे वैसे ब्रह्मविद्या उत्कर्ष होती रहती है और अपरोक्षरूपता को प्राप्त होती है इसलिए कर्मानुष्ठान करने वाले को ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ कहा है, जिज्ञासुओं में नहीं कहा अतः कभी भी विहित कर्मों का त्याग न करके विद्या के अङ्गरूप से उनका अनुष्ठान करते रहना चाहिए और अङ्गी विद्या में भी प्रवृत्त होना चाहिए। नित्य-नैमित्तिक कर्म ज्ञानी के लिए भी कभी त्याज्य नहीं हैं, इसी अभिप्राय से श्रुति 'आत्मक्रीडः' 'आत्मरतिः' इन पदों के साथ क्रियावान् पद का प्रयोग करती है।

**सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।**
**अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥5॥**

**अन्वय**

क्षीणदोषाः यतयः यं पश्यन्ति। शरीरे अन्तः शुभ्रः ज्योतिर्मयः हि। एषः आत्मा सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण सम्यग्ज्ञानेन नित्यं लभ्यः हि।

**अर्थ**

**क्षीणदोषाः**- दोषरहित **यतयः**- यत्नशील साधक **यम्**- जिसका

आप्तकामाः ऋषयः हि आक्रामन्ति। यत्र सत्यस्य परमं तत् निधानम्।

**अर्थ**

**सत्यम्**- सत्य **एव**- ही **जयति**- जीतता है, **अनृतम्**- झूठ **न**- नहीं। **विततः**- विस्तृत **देवयानः**- देवयान **पन्थाः**- मार्ग **सत्येन**- सत्य से प्राप्त होता है। **येन**- जिस मार्ग से **आप्तकामाः**- तृष्णारहित **ऋषयः**- तत्त्वदर्शी **हि**- ही (उस स्थान को) **आक्रामन्ति**- प्राप्त करते हैं। **यत्र**- जिस स्थान में **सत्यस्य**- सत्यवचन का **परमम्**- परमफल **तत्**- वह **निधानम्**- प्राप्य ब्रह्म है।

**व्याख्या**

**सत्यवचन की महिमा**

सत्यवचन से बढ़कर कोई धर्म नहीं है- **नास्ति सत्यात्परो धर्मः** (म.भा.शां.162.24 म.स्मृ.8.82), ऐसा महाभारत में भी कहा है। सर्वत्र सत्य की ही विजय होती है, अनृत की नहीं। अन्ततः सत्यवादी पुरुष अनृतवादी को परास्त कर ही देता है, इसी अभिप्राय से **यतो धर्मस्ततो जयः** कहा जाता है। अर्चिरादि[2] रूप से विस्तृत देवयान नामक मार्ग सत्यवादी को ही प्राप्त होता है। सत्यवचन न बोलने से अन्तःकरण की शुद्धि न होने से ब्रह्मदर्शन नहीं हो सकता और तब ब्रह्म के अप्राकृत लोक जाने के लिए देवयान प्राप्त नहीं हो सकता, इस प्रकार देवयान नामक पथ की प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन सत्यवचन सिद्ध होता है। अतीन्द्रिय ब्रह्मतत्त्व का दर्शन करने वाले तृष्णारहित योगी देवयानमार्ग से वहाँ जाकर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, जहाँ सत्यवचन का परम प्रयोजनभूत प्राप्य ब्रह्म है, वह स्थान ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए गन्तव्य लोक है।

*अब सत्यभाषी के द्वारा देवयान से प्राप्य ब्रह्मस्वरूप का वर्णन किया जाता है* –

**बृहच्च तत् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।**
**दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्॥7॥**

---

**टिप्पणी**- 1. विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन ग्रन्थ में अर्चिरादि द्रष्टव्य है।

**अन्वय**

तत् बृहत् दिव्यं च अचिन्त्यरूपम् च सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं तत् विभाति। तत् दूरात् सुदूरे, इह अन्तिके च पश्यत्सु इह गुहायां एव निहितम्।

**अर्थ**

**तत्**- परमात्मा (स्वरूप से और गुणों से भी) **बृहत्**- बड़ा है। **दिव्यम्**[1]- त्रिपादविभूति में विद्यमान **च**- तथा **अचिन्त्यरूपम्**- वाणी और मन से अचिन्त्य आकर्षकस्वरूप वाला है, **च**- और **सूक्ष्मात्**- सूक्ष्म से **सूक्ष्मतरम्**- अत्यन्त सूक्ष्म **तत्**- वह परमात्मा **विभाति**- प्रकाशित होता है। **तत्**- वह **दूरात्**- प्रकृतिमण्डल से **सुदूरे**- पर परम पद में है। **इह**- ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत **अन्तिके**- रविमण्डल में है **च**- और **पश्यत्सु**[2]- ब्रह्मदर्शियों के **इह**- शरीर में **गुहायाम्**- हृदय गुहा में **एव**- ही **निहितम्**- स्थित है।

**व्याख्या**

**ब्रह्मस्वरूप**

ब्रह्म स्वरूपतः और गुणतः बृहत् है। जैसे ब्रह्मस्वरूप बृहत् है, वैसे ही उसके ज्ञानशक्त्यादि अनन्त कल्याणगुणगण भी बृहत् हैं। वह अप्राकृत स्थान में है, उसका कमनीयरूप अचिन्त्य है अर्थात् उस रूप की इयत्ता(सीमा) का मन से चिन्तन नहीं किया जा सकता है। परमात्मा चेतनाऽचेतन सब के अन्दर प्रविष्ट होकर रहते हैं। अचेतन पदार्थ से सूक्ष्म चेतन जीव है, उसमें भी प्रविष्ट होकर रहने से परमात्मा सूक्ष्मतर हैं, वे दर्शन करने वालों को विशेषरूप से प्रकाशित (ज्ञात) होते हैं अर्थात् ब्रह्मदर्शी अनन्त कल्याणगुणगण आदि प्रकारों सहित उनका साक्षात्कार करते हैं। वे प्रकृतिमण्डल से अत्यन्त दूर अप्राकृत स्थान परम पद में हैं, ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत आदित्यमण्डल में भी हैं और ब्रह्मदर्शियों के हृदयरूप गुहा में साक्षात्कार का विषय होकर स्थित हैं; इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप की व्यापकता का वर्णन किया जाता है।

---

**टिप्पणी**- 1. दिवि भवं दिव्यम्।
2. पश्यतां ज्ञानिनाम् (उ.ख.)

*अब परमात्मसाक्षात्कार का साधन उनका अनुग्रह कहा जाता है-*

**न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।**
**ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यति[1] निष्कलं ध्यायमानः॥8॥**

**अन्वय**

चक्षुषा न गृह्यते, अन्यैः देवैः न, वाचा न, तपसा वा कर्मणा अपि तु निष्कलं ध्यायमानः ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः। ततः तं पश्यति।

**अर्थ**

परमात्मा **चक्षुषा**- चक्षु से **न**-नहीं **गृह्यते**- ज्ञात होता। **अन्यैः**- अन्य **देवैः**- इन्द्रियों से **न**- ज्ञात नहीं होता। **वाचा**- वाचा से (प्रतिपादन करने पर) **न**- ज्ञात नहीं होता। **तपसा**- तप से **वा**- और **कर्मणा**- कर्म से **अपि**- भी ज्ञात नहीं होता **तु**- किन्तु **निष्कलम्**- निरवयव परमात्मा का **ध्यायमानः**- निरन्तर ध्यान करते हुए **ज्ञानप्रसादेन**- परमात्मा के अनुग्रह से(मुमुक्षु) **विशुद्धसत्त्वः**- निर्मल अन्तःकरण वाला होता है। **ततः**- तत्पश्चात् **तम्**- परमात्मा का **पश्यति**- साक्षात्कार करता है।

**व्याख्या**

**भगवदनुग्रह से साक्षात्कार**

ब्रह्मस्वरूप को चक्षु इन्द्रिय से नहीं जान सकते। इसी प्रकार श्रोत्र आदि इन्द्रियों से भी नहीं जान सकते। किसी वक्ता के द्वारा वाणी से प्रतिपादन करने पर भी नहीं जान सकते। वह चक्षु आदि इन्द्रियों का विषय ही नहीं है। वाणी से प्रतिपादन करने पर भी उसका परोक्षज्ञान ही होता है, साक्षात्कार नहीं होता। किसी भी प्रकार के तप से नहीं जान सकते, अग्निहोत्रादि कर्मों से भी नहीं जान सकते। परमात्मस्वरूप निरवयव है, सावयव नहीं। उनका ध्यान करते हुए उनके अनुग्रह से अन्तःकरण निर्मल हो जाता है तब ध्यानकर्ता दर्शनसमानाकार ध्यान से उनको जानता है। यहाँ भगवदनुग्रह से निर्मल मन होने पर साक्षात्कार

---

**टिप्पणी**- 1. 'पश्यते' इति पाठान्तरः।

कहा जाता है। उनका अनुग्रह साक्षात्कारका साक्षात् साधन है। अन्य सभी अनुग्रह के द्वारा साधन हैं। 'ज्ञानप्रसादेन' यहाँ पर 'ज्ञायतेऽनेन' इस व्युत्पत्ति के द्वारा ज्ञान शब्द से परमात्मा का ग्रहण होता है, वह ज्ञान का प्रधान साधन है। परमात्मा से अनादि ज्ञान का प्रसार होता है- **प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी** (श्वे.उ.4.18)। **यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः** (क.उ.1.2.23, मु.उ.3.2.3) यह श्रुति भी परमात्मसाक्षात्कार में उनके अनुग्रह को ही साधन कहती है।

***विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु*** *(मु.उ.3.1.8) इस प्रकार पूर्व मन्त्र में कहा गया विशुद्ध अन्तःकरण वाला ब्रह्मदर्शी आत्मा और परमात्मा का स्वरूप कहा जाता है-*

**एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश।**
**प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा॥9॥**

### अन्वय

यस्मिन् पञ्चधा प्राणः संविवेश। एषः आत्मा अणुः, चेतसा वेदितव्यः, यस्मिन् विशुद्धे प्रजानां प्राणैः चित्तं सर्वम् ओतम्, एषः आत्मा विभवति।

### अर्थ

**यस्मिन्**- जिस आत्मा में (प्राण, अपान आदि) **पञ्चधा**- पाँच रूपों में विभक्त होकर **प्राणः**- मुख्य प्राण **संविवेश**- स्थित है।(वह) **एषः**- यह **आत्मा**- आत्मा **अणुः**- अणु है, **चेतसा**- विशुद्ध मन से **वेदितव्यः**- साक्षात्कार करने योग्य है। **यस्मिन्**- जिस **विशुद्धे**- दोषरहित परमात्मा में **प्रजानाम्**- सम्पूर्ण प्रजा के **प्राणैः**- प्राणों के सहित **चित्तम्**- अन्तःकरण (तथा) **सर्वम्**- सभी इन्द्रियवर्ग **ओतम्**- स्थित है। (वह) **एषः**- यह **आत्मा**- परमात्मा **विभवति**- विभु होता है।

### व्याख्या

#### आत्मा और परमात्मा का वैलक्षण्य

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पाँच रूपों में विभाजित

होकर मुख्य प्राण जिसके आश्रित रहता है, वह यह आत्मा अणु है तथा विशुद्ध मन से साक्षात्कार करने योग्य है। सर्वथा दोषरहित जिस परमात्मा में सभी प्रजा के प्राण, मन और अन्य इन्द्रियाँ स्थित हैं, वह यह परमात्मा विभु है। इस प्रकार उपासक आत्मा और उपास्य ब्रह्म की विलक्षणता कही जाती है। आत्मा के आश्रित रहने वाले प्राण आदि भी आत्मा के द्वारा परमात्मा में स्थित रहते हैं इसलिए विशिष्टाद्वैतसम्प्रदाय के सभी उपनिषद्भाष्यकारों ने प्रस्तुत श्रुति के पूर्वार्द्ध का भी परमात्मपरक अर्थ किया है किन्तु श्रीभाष्यकार भगवान् ने **स्वशब्दोन्मानाभ्यां च** (ब्र. सू.2.3.23) इस सूत्र के भाष्य में आत्मपरक अर्थ किया है, मैंने इसी का अनुसरण किया है। आत्मा स्वरूपतः अणु होने पर भी धर्मभूत ज्ञान के विकास से मोक्ष दशा में विभु होती है। जैसा कि श्वेताश्वतर श्रुति कहती है। सूक्ष्म केश के सूक्ष्मतर अग्रभाग के 100 भाग करके उनमें भी एक भाग के 100 भाग करने पर उनमें एक भाग जितना छोटा है, उतना छोटा जीवात्मा है, वह मोक्ष दशा में धर्मभूत ज्ञान के विकास से विभुरूप अनन्त होता है- **वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते** (श्वे.उ.5.9)॥

*अब निर्मल अन्तःकरण वाले ब्रह्मदर्शी की महिमा कही जाती है-*

**यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।**
**तं तं लोकं जयते[1] तांश्च कामान् तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः॥10॥**

**॥ इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥**

**अन्वय**

विशुद्धसत्त्वः यं यं लोकं मनसा संविभाति च यान् कामान् कामयते। तं तं लोकं च तान् कामान् जयते। तस्मात् भूतिकामः आत्मज्ञं हि अर्चयेत्।

**अर्थ**

**विशुद्धसत्त्वः**- निर्मल अन्तःकरण वाला ब्रह्मज्ञानी **यं यम्**- जिस जिस **लोकम्**- लोक (की प्राप्ति) का **मनसा**- मन से **संविभाति**-

टिप्पणी- 1. जयति इति पाठान्तरः।

संकल्प करता है, **च**- और **यान्**- जिन **कामान्**- भोग्य पदार्थों की **कामयते**- कामना करता है, वह **तं तम्**- उस उस **लोकम्**- लोक को **च**- और **तान्**- उन **कामान्**- भोग्य पदार्थों को **जयते**- प्राप्त कर लेता है, **तस्मात्**- इसलिए **भूतिकामः**- ऐश्वर्य की कामना करने वाला मनुष्य **आत्मज्ञम्**- ब्रह्मज्ञानी की **हि**- निश्चितरूप से **अर्चयेत्**- अर्चना करे।

**व्याख्या**

**ब्रह्मज्ञानी की सेवा से ऐश्वर्यप्राप्ति**

निर्मल सत्त्व वाला ब्रह्मदर्शी सत्यसंकल्प होता है, वह मन से जिस लोक को प्राप्त करने का संकल्प करता है और जिस भोग्य विषय की कामना करता है, वह उन सबको प्राप्त करता है। वस्तुतः ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मदर्शन से अतिरिक्त कुछ चाहता ही नहीं। प्रस्तुत श्रुति तो उसकी महिमा को द्योतित करती है। यदि वह कुछ चाहेगा, तो उसे अवश्य मिलेगा, यह अभिप्राय है। ब्रह्मदर्शी ब्रह्म को प्राप्त करता है। उसमें अन्य सभी फल अन्तर्भूत हैं। ब्रह्मदर्शी की विलक्षण महिमा होने से ऐश्वर्यकामी पुरुष को ब्रह्मदर्शी की अन्न, औषध और वस्त्र आदि आवश्यक सामग्री से सब प्रकार की सेवा करनी चाहिए, यही उसकी अर्चना है। प्रसन्न हुआ ब्रह्मज्ञानी मुझे अभीष्ट फल की प्राप्ति करायेगा, इस भावना से उसकी अर्चना करनी चाहिए, यह बुभुक्षु के अभीष्ट फल की प्राप्ति का साधन है।

## तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः

*सकाम व्यक्ति को ब्रह्मज्ञानी की सेवा से प्राप्त होने वाला ऐश्वर्य फल कहकर अब उसकी सेवा से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन किया जाता है-*

**स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।**
**उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः॥1॥**

**अन्वय**

यत्र विश्वं निहितम्, शुभ्रं भाति। धाम एतत् परमं ब्रह्म सः वेद। ये अकामाः पुरुषम् उपासते। ते धीराः एतत् शुक्रं हि अतिवर्तन्ति।

अर्थ

**यत्र**- जिसमें **विश्वम्**- जगत् **निहितम्**- स्थित है, वह **शुभ्रम्**- स्वप्रकाश ब्रह्म **भाति**- प्रकाशित होता है। **धाम**- धाम शब्द से कहे जाने वाले **एतत्**- इस **परमम्**- सर्वोत्कृष्ट **ब्रह्म**- ब्रह्म का **सः**- ब्रह्मवेत्ता **वेद**- साक्षात्कार करता है। **ये**- जो **अकामाः**- कामनारहित मुमुक्षु **पुरुषम्**- ब्रह्मज्ञानी की **उपासते**- सेवा करते हैं, **ते**- वे **धीराः**- बुद्धिमान् **एतत्**- इस **शुक्रम्**- वीर्य का **हि**- निश्चित रूप से **अतिवर्तन्ति**- अतिक्रमण कर जाते हैं।

व्याख्या

**ब्रह्मज्ञानी की सेवा से मोक्ष**

जिसमें चेतनाचेतनरूप निखिल जगत् स्थित है। वह स्वप्रकाश ब्रह्म सदा असंकुचित ज्ञानवाला होकर रहता है। छान्दोग्य श्रुति कहती है कि उपासक के जो भोग्य पदार्थ इस लोक में हैं और जो इस लोक में नहीं हैं, वे सभी परमात्मा में स्थित हैं- **यच्चास्येहास्ति, यच्च नास्ति, सर्वं तदस्मिन् समाहितमिति** (छां.उ.8.1.3)। सभी अभीष्ट पदार्थों का आश्रय होने से परमात्मा धाम शब्द से कहा जाता है। ब्रह्मवेत्ता ही सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। जो मुमुक्षु मनुष्य कामनारहित होकर ब्रह्मवेत्ता की परमात्मा के समान भलीभाँति सेवा करते हैं, वे शुक्र का अतिक्रमण कर जाते हैं। जीवात्मा पिता के शुक्र में आकर उसके द्वारा माता के गर्भ में प्रवेश करके जन्म लेता है। शुक्र के अतिक्रमण करने का अर्थ है- इस संसार में जन्म लेने के लिए नहीं आता अर्थात् मुक्त हो जाता है। मुमुक्षु मनुष्य ब्रह्मवेत्ता की सम्यक् शुश्रुषा करके उसके अनुग्रह से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके संसार से मुक्त हो जाता है, यह प्रस्तुत श्रुति का अभिप्राय है।

*अब सकाम बुभुक्षु से निष्काम मुमक्षु की विलक्षणता का वर्णन करते हैं-*

**कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।**
**पर्याप्तकामस्य कृतात्मनश्च[1] इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः॥2॥**

**अन्वय**

यः कामान् मन्यमानः कामयते। सः कामभिः तत्र तत्र जायते च पर्याप्तकामस्य कृतात्मनः इह एव सर्वे कामाः प्रविलीयन्ति।

**अर्थ**

**यः**- जो बुभुक्षु मनुष्य **काभान्**- भोग्य विषयों को (भोग्यत्वेन) **मन्यमानः**- मानते हुए (उनकी) **कामयते**- कामना करता, **सः**- वह **कामभिः**- कामनाओं के कारण **तत्र तत्र**- उन उन योनियों में **जायते**- जन्म लेता है **च**- और **पर्याप्तकामस्य**[2]- परमात्मा की कामना करने वाले **कृतात्मनः**[3]- आत्मतत्त्वज्ञानी की **इह**- इस जन्म में **एव**- ही **सर्वे**- सभी **कामाः**- कामनाएं **प्रविलीयन्ति**- नष्ट हो जाती हैं।

**व्याख्या**

**ज्ञानी की कामनाओं का नाश**

जो बर्हिमुख मनुष्य शब्दादि विषयों को और उनके आश्रय देव, मनुष्य आदि शरीररूप विषयों को भोग्यत्वेन मानते हुए उनकी कामना करता है, वह कामनाओं के कारण शब्दादि विषयों को प्राप्त करने के लिए देव, मनुष्यादि योनियों में जन्म लेता है किन्तु जिसे अपनी आत्मा का साक्षात्कार हो गया है और वह अपनी आत्मा में स्थित परमात्मा (के साक्षात्कार) की ही कामना करता है, उसकी इसी जन्म में परमात्म-साक्षात्कार से सभी कामनाएं नष्ट हो जाती हैं। इस कारण संसार में उसका पुनर्जन्म नहीं होता अथवा पर्याप्तकाम का अर्थ है- आप्तकाम अर्थात् जिसकी सभी कामनाएं पूर्ण हो गयी हैं और कृतात्मनः का अर्थ है- परमात्मतत्त्वज्ञानी, इसकी इसी जन्म में सभी कामनाएं लीन हो जाती

---

**टिप्पणी**- 1. कृतात्मनस्तु इति पाठान्तरः।

2. पर्याप्तं परिपूर्णं परं ब्रह्मं कामयत इति पर्याप्तकामः, तस्य।

3. विदितात्मतत्त्वस्य इत्यर्थः। कृतात्मनः इत्यत्र शब्ददर्दुरं करोति (अ.सू.4.4.34) इत्यत्रेव कृञो ज्ञानमर्थः (प्रका) । यथा शब्दं करोति जानाति इति शाब्दिकः वैयाकरणः।

हैं अतः पुनर्जन्म नहीं होता।

**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।**
**यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते[1] तनूं स्वाम् ॥3॥**

**अन्वय**

अयम् आत्मा बहुना श्रुतेन न लभ्यः, प्रवचनेन न, मेधया न। एषः एव यं वृणुते, तेन लभ्यः? तस्य एषः आत्मा स्वां तनूं विवृणुते।

**अर्थ**

**अयम्**- यह **आत्मा**- परमात्मा **बहुना**- बहुत **श्रुतेन**- श्रवण से **न लभ्यः**- प्राप्त होने योग्य नहीं है। **प्रवचनेन न**- मनन से प्राप्त नहीं होता (और) **मेधया न**- निदिध्यासन से(भी) प्राप्त नहीं हो सकता। **एषः**- यह परमात्मा **एव**- ही **यम्**- जिसका **वृणुते**- वरण करता है **तेन**- उसके द्वारा **लभ्यः**- प्राप्य होता है, **तस्य**- उसके लिए **एषः**- यह **आत्मा**- परमात्मा **स्वाम्**- अपने **तनूम्**- स्वरूप को **विवृणुते**- प्रकट कर देता है।

**व्याख्या**

**अनुग्रह से साध्य परमात्मप्राप्ति**

उक्त श्रुति में श्रुत शब्द से श्रवण का ग्रहण होता है, इसके साथ एक ही वाक्य में उच्चरित होने से प्रवचन शब्द का अर्थ मनन होता है। प्रवचन शब्द का मुख्यार्थ अध्यापन है। मनन के विना कुशलता से अध्यापन (प्रवचन) नहीं होता। यहाँ प्रवचन शब्द लक्षणा से प्रवचन के साधन मनन का बोधक है अथवा **प्रोच्यतेऽनेन** इस प्रकार करण में प्रत्यय करने पर प्रवचन शब्द शक्तिवृत्ति से ही मनन को कहता है और मेधा शब्द निदिध्यासन को कहता है।

यह परमात्मा बहुत श्रवण से प्राप्त नहीं होता, बहुत मनन से प्राप्त नहीं होता और निदिध्यासन से भी प्राप्त नहीं होता, इस प्रकार परमात्मप्राप्ति में श्रवणादि के उपाय होने का निषेध किया जाता है तो परमात्मा किसके

---

**टिप्पणी**-1. 'वृणुते' इति पाठान्तरः

द्वारा प्राप्य है? ऐसी शंका होने पर कहते हैं कि **यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।** यह परमात्मा ही जिसका वरण करते हैं, उसके द्वारा प्राप्य होते हैं। वे किसका वरण करते हैं? प्रियतम वस्तु का ही वरण किया जाता है, प्रियतम कौन है? परमात्मा से निरतिशय प्रीति करने वाला ज्ञानी भक्त। वह प्रियतम कैसे होता है? परमात्मा से प्रीति (प्रेम) करने पर उनका प्रियतम हो जाता है। श्रीभगवान् ने स्वयं कहा है कि मैं ज्ञानी को अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे अत्यन्त प्रिय है- **प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।** (गी.7.17) उपासक की परमात्मा में जो प्रीति होती है, उससे परमात्मा की उपासक में प्रीति हो जाती है। उससे वह परमात्मा का प्रिय हो जाता है, परमात्मा प्रिय होने पर उसका वरण कर लेते हैं और वरणीय के लिए सुलभ हो जाते हैं। जो परमात्मा से निरतिशय प्रेम करता है, उनके साक्षात्कार के विना अत्यन्त व्याकुल हो जाता है और एक क्षण भी जीवनधारण करना संभव नहीं मानता, परमात्मा भी उसके विरह को सहन नहीं कर पाते और वे प्राप्य बनने के लिए उसका वरण कर लेते हैं और उसके लिए अपने स्वरूप को प्रकट कर देते हैं। इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता के उपेय (प्राप्य) परमात्मा अपनी प्राप्ति में स्वयं उपाय भी बन जाते हैं।

**शंका**- परमात्मा श्रवण, मनन और निदिध्यासन से प्राप्त नहीं होता तो श्रवणादि साधन व्यर्थ होते हैं।

**समाधान**- ऐसा कहना उचित नहीं क्योंकि 'परमात्मा श्रवणादि से प्राप्त नहीं होता' यह श्रुति कहती है किन्तु वह उनको व्यर्थ नहीं कहती। यह ऊपर कहा जा चुका है कि परमात्मा जिसका वरण करते हैं, उसे ही प्राप्त होते हैं। प्रियतम का ही वरण किया जाता है, परमात्मा में प्रीति रखने वाला ब्रह्मवेत्ता ही उनका प्रियतम होकर वरणीय हो जाता है, इससे सिद्ध होता है कि प्रीति से रहित श्रवणादि उपाय नहीं हैं। मुमुक्षु श्रवण, मनन के पश्चात् निदिध्यासन करता है। तेल की धारा के समान कभी न टूटने वाले परमात्मचिन्तन के प्रवाह को निदिध्यासन[1] कहते हैं। अभ्यास करते करते जब वह प्रीतिरूप हो जाता है, तब परमात्मा उसका वरण कर लेते हैं। प्रीतिरूपता को प्राप्त हुआ परमात्मा का निरन्तर स्मरण ही भक्ति कहलाता है। उत्तम साधक प्रीति से श्रवण, प्रीति से मनन और

प्रीति से निदिध्यासन करता है। प्रीति की विभिन्न अवस्थाएं होती हैं। उत्तरोत्तर सतत् अभ्यास से दृढ प्रीतिरूप निदिध्यासन होने पर साधक जब उनका वरणीय हो जाता है, तब वे उसे अपना साक्षात्कार प्रदान करते हैं। इस विवरण से सिद्ध होता है कि वरणीय होने की योग्यता (भगवान् का प्रियतम होने) के लिए वे साधन अपेक्षित होते हैं, उनके विना योग्यता ही नहीं आ सकती, अतः वे साधन व्यर्थ नहीं हैं। प्रीतिरूपापन्न दर्शनसमानाकार ज्ञान ही उनका साक्षात्कार है। मुझमें निरन्तर लगकर भजन करने वालों को मैं उस बुद्धियोग (प्रीतिरूपापन्न दर्शनसमानाकार ज्ञान) को प्रदान करता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त हो जाते हैं- **तेषां सतत-युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥** (गी.10.10) इस प्रकार श्रीभगवान् ने स्वयं अपनी प्राप्ति के साधन बुद्धियोग को प्रदान करने की बात कही है। उपासना परमात्मप्राप्ति में अनुग्रहकर्ता परमात्मा के द्वारा उपाय होती है और परमात्मा साक्षात् उपाय होते हैं।

*अव अन्वयव्यतिरेक से परमात्मप्राप्ति के सहकारी कारण कहे जाते हैं-*

**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात्।**
**एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते[1] ब्रह्म धाम॥4॥**

**अन्वय**

अयम् आत्मा बलहीनेन लभ्यः न, च प्रमादात् न, वा अलिङ्गात् तपसा अपि, तु यः विद्वान् एतैः उपायैः यतते। तस्य एषः आत्मा धाम ब्रह्म विशते।

**अर्थ**

**अयम्**- यह **आत्मा**- परमात्मा **बलहीनेन**- अवसाद से युक्त मन के द्वारा **लभ्यः**- प्राप्य **न**- नहीं है **च**- और **प्रमादात्**- प्रमाद से (प्राप्य) **न**- नहीं है। **वा**- तथा **अलिङ्गात्**- लिङ्गरहित **तपसा**- संन्यास

---

**टिप्पणी**- 1. 'विशति' इति प्रतिपदार्थदीपिकासम्मतः पाठः।

से **अपि**- भी प्राप्य नहीं है **तु**- किन्तु **यः**- जो **विद्वान्**- ब्रह्मोपासक **एतैः**- मनोबल आदि **उपायैः**- उपायों से (ब्रह्मप्राप्ति के लिए) **यतते**- यत्न करता है, **तस्य**- उसका **एषः**- यह **आत्मा**- आत्मस्वरूप **धाम**- प्राप्य **ब्रह्म**- ब्रह्म को **विशते**- प्राप्त करता है।

**व्याख्या**

**परमात्मा प्राप्ति के सहकारी**

परमात्मप्राप्ति में शारीरिक बल का कोई महत्त्व नहीं है, वह मानसिक बल से प्राप्य है। अनवसाद ही मानसिक बल है। देश और काल आदि की प्रतिकूलता से जन्य मन का विषादरूप दैन्य अवसाद कहलाता है और उसका विपरीत गुण अनवसाद कहा जाता है- **अवसादो नाम देशकालवैगुण्यादिजन्यं दैन्यम्, तदभावो हि बलम्।** अवसाद से युक्त मन का होना ही मन के बल से हीन होना है। यह परमात्मा अवसाद से युक्त मन के द्वारा प्राप्य नहीं है। प्रमाद अर्थात् मन की अनेकाग्रता (व्यग्रता) से प्राप्य नहीं है। श्रुति में आया तपस् शब्द तप की प्रधानता वाले संन्यास आश्रम का बोध कराता है। शिखा, यज्ञोपवीत, काषायवस्त्र आदि संन्यास के लिङ्ग हैं। **अथ खलु सौम्य कुटीचको बहूदको हंसः परमहंस इत्येते परिव्राजकाश्चतुर्विधा भवन्ति। सर्व एते विष्णुलिङ्गिनः शिखिन उपवीतिनः।** (शा.उ.11) इत्यादि श्रुतियाँ परमहंस संन्यासी के लिए भी शिखा-सूत्र का विधान करती हैं और **जातु शिखां न वापयेत्** (शा.उ.20) यह श्रुति परमहंस यति के लिए भी शिखात्याग का निषेध करती है। तपसः यह पद ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों का भी उपलक्षण है क्योंकि सभी आश्रमियों का ब्रह्मविद्या में अधिकार है। परमात्मा लिङ्गरहित आश्रम से प्राप्य नहीं है। अर्थात् ब्रह्मोपासक को भी आश्रम के लिङ्ग अपेक्षित हैं। लिङ्गधारण करने से मन में कर्तव्यपालन की तत्परता और निषिद्धकर्म के त्याग की भावना बनती है, इसलिए उनका धारण अनिवार्य कहा जाता है। जो ब्रह्मोपासक अनवसाद युक्त मन से, एकाग्रमन से और लिङ्गसहित आश्रम से युक्त होकर ब्रह्मप्राप्ति के लिए यत्न करता है, उसका आत्मस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करता है।

*अब ब्रह्मदर्शी की इस लोक और परलोक में स्थिति कही जाती है।–*

**संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।**
**ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः[1] सर्वमेवाविशन्ति॥5॥**

**अन्वय**

ऋषयः एनं संप्राप्य ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानः वीतरागाः प्रशान्ताः ते धीराः सर्वतः सर्वगं प्राप्य युक्तात्मानः एव सर्वम् आविशन्ति।

**अर्थ**

जो **ऋषयः**– तत्त्वदर्शी **एनम्**– परमात्मा का(जीवन काल में ही) **संप्राप्य**– दर्शन (साक्षात्कार) करके **ज्ञानतृप्ताः**– दर्शन से तृप्त (वे) **कृतात्मानः[2]**– ज्ञात परमात्मस्वरूप वाले **वीतरागाः**– राग से रहित (और) **प्रशान्ताः**– वशीकृत इन्द्रिय वाले होते हैं। **ते**– वे **धीराः**– ज्ञानी महात्मा **सर्वतः**– सभी ओर से **सर्वगम्**– सब में विद्यमान परमात्मा को (देशविशेष में) **प्राप्य**– प्राप्त करके **युक्तात्मानः**– आविर्भूत गुणाष्टक से युक्त आत्मस्वरूप वाले होकर **एव**– ही (धर्मभूत ज्ञान से) **सर्वम्**– सब का **आविशन्ति**– अनुभव करते हैं।

**व्याख्या**

**ब्रह्मदर्शी की स्थिति**

अतीन्द्रिय तत्त्वदर्शी जीवन रहते ही ब्रह्म का अनुभव करके उस (अनुभव) से सन्तुष्ट, ज्ञात परमात्मस्वरूप वाले, विषय की आशा से रहित और इस कारण अत्यन्त शान्त मन वाले होते हैं। वे धीर महात्मा अर्चिरादि से जाकर अन्दर और बाहर सब ओर से सभी में विद्यमान व्यापक परमात्मा का अप्राकृत विभूति में साक्षात्कार करते हैं और उससे आविर्भूत अपहतपाप्मत्वादि गुणों से विशिष्ट स्वरूप वाले होकर

---

**टिप्पणी**– 1. मुक्तात्मानः इति मध्वभाष्यसम्मतः पाठः।
2. कृतः ज्ञातः आत्मा यैः ते कृतात्मानः।

धर्मभूतज्ञान से सब को व्याप्त करते हैं अर्थात् सबका अनुभव करते हैं। अपहतपाप्मत्वादि परमात्मा के समान जीवात्मा के भी गुण हैं, वे बद्धावस्था में तिरोहित रहते हैं और देशविशेष से विशिष्ट परमात्मा का साक्षात्कार करने पर आविर्भूत हो जाते हैं तथा बद्धावस्था में संकुचित रहने वाला धर्मभूत ज्ञान भी विभु हो जाता है। वह इस विभु ज्ञान से ब्रह्म के स्वरूप, रूप(श्रीविग्रह) गुण और विभूतिभूत सभी का अनुभव करता है। इनमें ब्रह्म का प्रधानत्वेन (विशेष्यत्वेन) और अन्य का तदाश्रितत्वेन (विशेषणत्वेन) अनुभव करता है। इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता इस लोक में परमशान्ति को प्राप्त करके रहता है और देहत्याग के पश्चात् ब्राह्म गुणों से युक्त होकर सर्वशरीरक ब्रह्म का अनुभव करता रहता है।

**वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः[1]।**
**ते ब्रह्मलोकेषु ( तु[2] ) परान्तकाले परामृतात्[3] परिमुच्यन्ति सर्वे॥6॥**

### अन्वय

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगात् शुद्धसत्त्वाः यतयः। ब्रह्मलोकेषु ते सर्वे परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति।

### अर्थ

जो **वेदान्तविज्ञानसुनिश्चिार्थाः**- वेदान्तविद्या से सुनिश्चित परमात्मतत्त्व वाले **संन्यासयोगात्**- काम्यकर्म का त्यागरूप योग से **शुद्धसत्त्वाः**- निर्मल अन्तःकरण वाले होकर (मोक्ष के लिए) **यतयः**- प्रयत्नशील होते हैं। **ब्रह्मलोकेषु[4]**- ब्रह्मनिष्ठ **ते**- वे **सर्वे**- सभी **परान्तकाले**- चरमदेह के अवसान काल में **परामृतात्**- परमात्मा के अनुग्रह से **परिमुच्यन्ति**- प्रकृतिबन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।

---

**टिप्पणी**- 1. यतयश्शुद्धसत्त्वाः इति पाठान्तरः।
2. केषुचित् संस्करणेषु 'तु' इत्यपि वर्तते।
3. परामृताः इति पाठान्तरः।
4. ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकः, तत्र वर्तमानाः ब्रह्मनिष्ठाः(श्रु.प्र.4.3.15)।

व्याख्या

**ब्रह्मदर्शी को मोक्षप्राप्ति**

विद्वान् काम्यकर्म के त्याग को संन्यास समझते हैं- **काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः** (गी.18.2)। जिन्होंने गुरुमुख से प्राप्त वेदान्तज्ञान से परमात्मतत्त्व का सुनिश्चय कर लिया है, ऐसे जो काम्यकर्म के त्यागपूर्वक फलाभिसन्धिरहित कर्मानुष्ठानरूप योग से शुद्ध अन्तःकरण वाले मुमुक्षु मोक्षप्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं अर्थात् श्रवण, मनन के अनन्तर निदिध्यासन करते रहते हैं। भोगी जीव बहिर्मुख वृत्तियों से बाह्य विषयों में विद्यमान रहते हैं किन्तु यह मुमुक्षु ब्रह्म में विद्यमान रहता है। जब प्रारब्ध से जन्य साधक का अन्तिम शरीर छूटने का समय आता है, तब यह भगवदनुग्रह से सभी बन्धनों से निवृत्त हो जाता है। परामृतात् के स्थान पर परामृताः पाठ मानने पर **ते**-वे **परान्तकाले**- अन्तिम शरीर का अवसान काल होने पर **ब्रह्मलोकेषु**[1]- ब्रह्मलोक में **परामृताः**[2]- ब्रह्म को प्राप्त करके तिरोधान करने वाली वासनासहित अविद्या से मुक्त हो जाते हैं। जीवात्मा परज्योति (अप्राकृत लोकस्थ परब्रह्म) को पाकर (तिरोधान की निवृत्ति होने से) अपहतपाप्मत्वादि ब्राह्मरूप से आविर्भूत होता है- **परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते** (छां.उ.8.12.2)।

**गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।**
**कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति॥7॥**

**अन्वय**

पञ्चदश कलाः प्रतिष्ठाः गताः च सर्वे देवाः प्रतिदेवतासु। कर्माणि च विज्ञानमयः आत्मा सर्वे अव्यये परे एकीभवन्ति।

---

**टिप्पणी**- 1. अप्राकृतब्रह्मलोकस्य स्थानबहुत्वात् 'ब्रह्मलोकेषु' इत्यत्र बहुवचनस्य प्रयोगः।
2. परम् अमृतशब्दितं ब्रह्म प्राप्यत्वेन येषां ते परामृताः ब्रह्मप्राप्ता इति यावत् (प्रका.)।

**अर्थ**

**पञ्चदश**- 15 **कलाः**- कलाएं **प्रतिष्ठाः**- अपने अपने कारणों में संसर्गविशेष से स्थिति को **गताः**- प्राप्त हो जाती हैं **च**- और **सर्वे**- सभी **देवाः**- इन्द्रियाँ **प्रतिदेवतासु**- अपने अधिष्ठाता देवताओं में संसर्गविशेष से स्थिति को प्राप्त होती हैं। **कर्माणि**- कर्म **च**- और **विज्ञानमयः**- विज्ञानमय **आत्मा**- जीवात्मा (ये) **सर्वे**- सभी **अव्यये**- अक्षर **परे**- परमात्मा में **एकीभवन्ति**- एकीभूत हो जाते हैं।

**व्याख्या**

**मुक्त की कलाओं की स्थिति**

प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, ज्योति, जल, पृथ्वी, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तपः, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम ये 16 कलाएं प्रश्नोपनिषत् (6.4)में वर्णित हैं। ये जीव की जीवनयात्रा की निर्वाहक हैं। मुक्त होने वाले ब्रह्मदर्शी के चरमदेह के अवसानकाल में कर्म को छोड़कर प्राणादि 15 कलाएं अपने कारणों में सम्बन्धविशेष से स्थित हो जाती हैं। वागादि इन्द्रियाँ अपने अग्नि आदि अधिष्ठाता देवताओं में संसर्गविशेष से स्थित हो जाती हैं। वाक्-इन्द्रिय का अधिष्ठाता देवता अग्नि है। पाणि (हाथ), पाद, पायु (गुदा), और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) इन इन्द्रियों के क्रम से इन्द्र, उपेन्द्र, मृत्यु और प्रजापति ये अधिष्ठाता देवता हैं तथा श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण इनके क्रम से दिक्, वायु, आदित्य, वरुण और अश्विनीकुमार ये अधिष्ठाता होते हैं। मन इन्द्रिय का अधिष्ठाता चन्द्रमा है, ये सभी इन्द्रियाँ अपने अधिष्ठाता देवताओं में स्थित हो जाती हैं। मुक्तात्मा के चरम देह के त्यागकाल में इनका नाश नहीं होता। ये कल्पपर्यन्त ऐसे ही रहती हैं अथवा आवश्यकतानुसार इन्द्रियहीन को प्राप्त हो जाती हैं। जब मृत ज्ञानीपुरुष की वाक् इन्द्रिय का अग्नि में लय होता है, प्राण का वायु में और चक्षु का आदित्य में लय होता है- **यत्रास्य पुरुषस्य मृतस्याग्निं वागप्येति, वातं प्राणश्चक्षुरादित्यम्** (बृ.उ.3.2.13) इत्यादि श्रुतियों में वागादि का अग्नि आदि में लय कहा जाना गौण है, यह बात **अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात्**( ब्र.सू3.1.4) इस सूत्र से कही गयी है।

**शंका**- गताः **कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा** इस प्रकार मन्त्र के पूर्व में इन्द्रियादि की भी स्थिति कही गयी तो **देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु** यहाँ पर पुनः इन्द्रियों की स्थिति क्यों कही जाती है?

**समाधान**- पूर्व में इन्द्रियों के नियामक अधिष्ठाता देवता अपने रूप में ही स्थित हो जाते हैं। वाक् का अधिष्ठाता अग्नि देवता अब वाक् का नियामक न रहकर अपने अग्निरूप से ही स्थित रहता है। चक्षु का नियामक वरुण देवता चक्षु का नियामक न रहकर अब आदित्यरूप से ही रहता है इत्यादि प्रकार से इन्द्रिय में विद्यमान देवताओं के नियमन (प्रेरणा) आदि कार्यों की निवृत्ति (अधिष्ठाता देवता में स्थिति) कही थी और अब इन्द्रियों की अधिष्ठाता देवताओं में स्थिति कही जाती है। प्रारब्ध से भिन्न जिन कर्मों ने अभी फल देना आरम्भ नहीं किया है, वे संचित कर्म कहलाते हैं। ब्रह्मदर्शी के संचित कर्म ब्रह्मसाक्षात्कार से विनष्ट हो जाते हैं, यहाँ कर्म के नाश का अर्थ है- उनकी शक्ति का नाश। प्राचीन पुण्यपापकर्मों के अनुसार कर्ता को अनुकूल व प्रतिकूल फल भोगने के लिये परमात्मा के प्रीतिविशेषरूप तथा कोपविशेषरूप जो संकल्प होते हैं, वे संकल्प ही कर्मों की शक्ति हैं। परमात्मा का धर्मभूत ज्ञान ही संकल्परूप होता है अतः चरम देह के अवसान काल में संकल्पात्मक कर्मों का ज्ञान में लय होना ही परमात्मा में एकीभूत होना है। विज्ञानमय जीवात्मा भी परमात्मा में एकीभूत हो जाता है। चैत्र, मैत्र, देवता, मनुष्य आदि नाम तथा देवत्व, मनुष्यत्व आदि रूप (आकृतियाँ) ये जीवों के भेदक आकार हैं, इन नामरूपात्मक भेदक आकारों के त्यागपूर्वक जीवात्मा का परमात्मा में स्थित होना ही एकीभूत होना है।

***विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति****(मु.उ.3.2.7) इस प्रकार जो आत्मा का परमात्मा में एकीभाव कहा था। अब श्रुति स्वयं उसे स्पष्ट करती है-*

**यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।**
**तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥8॥**

**अन्वय**

यथा नद्यः स्यन्दमानाः नामरूपे विहाय समुद्रे अस्तं गच्छन्ति तथा विद्वान् नामरूपात् विमुक्तः परात् परं दिव्यम् पुरुषम् उपैति।

**अर्थ**

**यथा**- जिस प्रकार (उच्च पर्वतीय स्थानों से निकलकर) **नद्यः**- गङ्गा आदि नदियाँ **स्यन्दमानाः**- बहती हुई (अपने) **नामरूपे**- नाम और रूप को **विहाय**- छोड़कर **समुद्रे**- समुद्र में **अस्तम्**- अस्त (अदर्शन) को **गच्छन्ति**- प्राप्त करती हैं **तथा**- उसी प्रकार **विद्वान्**- ब्रह्मज्ञ पुरुष **नामरूपात्**- नामरूप से **विमुक्तः**- रहित होकर **परात्**- पर से **परम्**- पर **दिव्यम्**- ज्योतिर्मय **पुरुषम्**- परमात्मा को **उपैति**- प्राप्त करता है।

**व्याख्या**

## मुक्त को परमात्मा की प्राप्ति

जैसे हिमालय आदि उच्च उद्गम स्थलों से निकलकर गङ्गा, नर्मदा, कावेरी और गोदावरी आदि नदियाँ नीचे की ओर प्रवहित होते हुए अपने गङ्गा आदि नामों तथा गङ्गात्व[1] आदि रूपों को छोड़कर समुद्र में अदृश्य हो जाती हैं, वैसे ही ब्रह्मदर्शी जीवनकाल में विद्यमान देवदत्त, यज्ञदत्त आदि नाम को तथा देवत्व, मनुष्यत्व आदि रूप (आकृति) को छोड़कर सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म को प्राप्त करता है, जिसका **दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः** (मु.उ.2.1.2) इत्यादि मन्त्रों से प्रतिपादन किया गया है।

## मुक्तात्मा की परमात्मा से समानता

श्रुतिद्वारा कहे गये नदी-समुद्र दृष्टान्त से स्पष्ट होता है कि मुक्तावस्था में भी जीवात्मा और ब्रह्म की स्वरूप-एकता नहीं होती।

---

**टिप्पणी**- 1. आकृति (संस्थान) को रूप कहते हैं, वह वस्तु का असाधारण धर्म होता है। इस प्रकार गङ्गा का रूप गङ्गात्व होता है। शुक्लत्वादि रूप प्रसिद्ध हैं, इस अभिप्राय से विद्वान् नदियों के शुक्लत्वादि रूप कहते हैं।

मुक्तावस्था में नाम-रूप का त्याग औपाधिक भेद का ही त्याग है, स्वाभाविक भेद का नहीं, वह तो विद्यमान ही रहता है। जैसे समुद्र में मिलने से पूर्व नदियों के गङ्गादि नाम तथा गङ्गात्व आदि रूप रहते हैं किन्तु समुद्र में मिलने के पश्चात् उनके वे नामरूप नहीं होते, वैसे ही ब्रह्मप्राप्ति से पूर्व आत्मा के देवदत्त आदि नाम तथा देवत्व, मनुष्यत्व आदि रूप होते हैं किन्तु ब्रह्मप्राप्ति के पश्चात् वे नाम, रूप नहीं रहते। जैसे- पूर्व नामरूपों को छोड़कर नदी समुद्र में है ही। नदी समुद्र में नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते, वैसे ही पूर्व नामरूप को छोड़कर मुक्तात्मा परमात्मा में है ही, वह परमात्मा में नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते। नदी का समुद्र से वैधर्म्य नदीत्व है, समुद्र में मिलने से उसका त्याग होकर समुद्र के साथ परम समता होती है, वैसे ही आत्मा का परमात्मा से वैधर्म्य प्रकृति के साथ सम्बन्ध है, परमात्मप्राप्ति से उसका त्याग होकर परमात्मा से परमसमता होती है।

### मुक्तात्मा का परमात्मा से भेद

प्रस्तुत मन्त्र में नामरूपात्मक भेदक आकारों के अभाव का ही प्रतिपादन किया गया है, स्वरूप एकता का प्रतिपादन नहीं किया गया। आत्मा के प्राकृत नाम-रूप के त्याग से आत्मा-परमात्मा का स्वरूपतः भेद निवृत्त नहीं हो सकता, प्राकृत नामरूप का त्याग होने पर भी यह श्रुति स्पष्ट रूप से **पुरुषमुपैति** इस प्रकार प्रापक आत्मा और प्राप्य परमात्मा में कर्मकर्तृभाव से भेद का प्रतिपादन करती है, इसीलिए **निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति** (मु.उ.3.1.3) यह श्रुति भी मुक्तावस्था में दोनों की परम समानता का ही प्रतिपादन करती है। कठोपनिषत् में कहा है कि हे नचिकेता! जिस प्रकार शुद्ध जल में मिलाया शुद्ध जल उस (शुद्ध जल) के समान शुद्ध ही होता है, उसी प्रकार परमात्मा को जानकर मनन करने वाले की आत्मा भी परमात्मज्ञान से विशुद्ध होकर विशुद्ध परमात्मा के समान होती है- **यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम** (क.उ.2.1.15)। जैसे एक जल और दूसरे जल का स्वरूप ऐक्य नहीं हो सकता, वैसे ही आत्मा और परमात्मा का स्वरूप ऐक्य नहीं हो सकता। उक्त

कठ श्रुति में तादृश् शब्द पठित है, तद्भाव शब्द पठित नहीं। तादृश शब्द से मुक्तात्मा और परमात्मा की समता कही जाती है। मुक्तावस्था में उपाधि न होने से उक्त वचनों से सिद्ध आत्मा और परमात्मा का भेद औपाधिक नहीं है, स्वाभाविक ही है।

## आत्मा और परमात्मा की स्वरूप-एकता मिथ्या

प्रकृति के साथ संसर्ग होने से आत्मा के प्राकृत नामरूप होते हैं। ब्रह्मसाक्षात्कार से संसर्ग समाप्त होने से वे नहीं होते, तब आत्मा और परमात्मा की परम समता होती है, अतः मुक्ति में दोनों के ऐक्य का कथन सर्वथा असंगत है। विष्णुपुराण में कहा है कि कुछ विद्वान् मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा का वास्तविक स्वरूप ऐक्य है, यह मिथ्या है क्योंकि एक द्रव्य दूसरा द्रव्य नहीं हो सकता - **परमात्मात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते। मिथ्यैतद् अन्यद् द्रव्यं हि नैति तद्द्रव्यतां गतः॥** (वि.पु.2.14.27)

**स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद, ब्रह्मैव भवति। नास्याब्रह्मवित् कुले भवति। तरति शोकं, तरति पाप्मानम्। गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति॥9॥**

### अन्वय

यः ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद, सः ब्रह्म एव भवति। अस्य कुले अब्रह्मवित् न भवति। शोकं तरति, पाप्मानं तरति। गुहाग्रन्थिभ्यः विमुक्तः अमृतः भवति।

### अर्थ

**यः**- जो **ह वै**- प्रसिद्ध **तत्**- उस **परमम्**- पर **ब्रह्म**- ब्रह्म को **वेद**- जानता है। **सः**- वह **ब्रह्म**- ब्रह्म (आविर्भूत ब्राह्मरूप वाला) **एव**- ही **भवति**- हो जाता है। **अस्य**- इसके **कुले**- कुल में **अब्रह्मवित्**- अब्रह्मवेत्ता **न**- नहीं **भवति**- होता, (वह) **शोकम्**- शोक को **तरति**- पार कर जाता है। **पाप्मानम्**- पाप को **तरति**- पार कर जाता है (और)

**गुहाग्रन्थिभ्यः**- हृदय की रागद्वेषादि ग्रन्थियों से **विमुक्तः**- मुक्त होकर **अमृतः**- आविर्भूत गुणाष्टक[1] वाला **भवति**- होता है।

**व्याख्या**

**ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति**

ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि **स यो ह वै तत् परमम्** इस श्रुति में 'तत्' यह सर्वनाम पद प्रयुक्त है। सर्वनाम पूर्व का परामर्शक (बोधक) होता है। पूर्व में **नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।** (मु.उ.3.2.8) इस प्रकार नामरूप से रहित होकर प्रापक मुक्तात्मा और प्राप्य परमात्मा का वर्णन किया है तथा **यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्ण कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।।** (मु.उ.3.1.3) इस प्रकार पूर्व में परमात्मा के साक्षात्कार से मुक्तात्मा की उससे परम समता कही थी। प्रस्तुत व्याख्येय श्रुति में आया तत् पद उसी पूर्वोक्त परमात्मा का बोधक है। **निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति** यह परम समानता का बोधक वाक्य भी मुक्तात्मा और परमात्मा के भेद का ही प्रतिपादन करता है, उसके परमात्मा होने का प्रतिपादन नहीं करता तथा **पुरुषमुपैति दिव्यम्** यहाँ भी कर्तृकर्मभाव से प्रापक मुक्तात्मा और प्राप्य परमात्मा का भेद वर्णित है। इस प्रकार जिसका साक्षात्कार होने पर मुक्तात्मा परमसमतारूप मोक्ष को प्राप्त करता है, उसी परमात्मा का **स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद** यहाँ 'तत्' पद से ग्रहण होता है इसलिए **ब्रह्मैव भवति** इसका अर्थ भी पूर्व श्रुतियों के अनुकूल ही है क्योंकि यहाँ भी परमसाम्य का ही वर्णन है। मुक्तावस्था में ब्रह्म से परम समानता वाली आत्मा को ही **ब्रह्मैव भवति** इस प्रकार श्रुति ब्रह्म शब्द से कहती है। **यः**- जो **परमं ब्रह्म**- पर ब्रह्म का **वेद**- साक्षात्कार करता है। **सः**- वह **ब्रह्म**- परब्रह्म से परमसमता वाला **एव**- ही **भवति**- हो जाता है।

---

**टिप्पणी**- 1. अपहतपाप्मत्व (पापरहितत्व), विजरत्व (जरारहितत्व), विमृत्युत्व (मृत्युरहितत्व) विशोकत्व (शोकरहितत्व), विजिघत्सत्व (क्षुधारहितत्व), पिपासारहितत्व, सत्यकामत्व और सत्यसंकल्पत्व ये गुणाष्टक हैं।

**एष आत्माऽपहतपाप्मा**(छां.उ.8.1.5) इस प्रकार दहरविद्या में अपहतपाप्मत्वादि ब्राह्म (ब्रह्म के) गुण कहे गये हैं और **य आत्माऽपहतपाप्मा** (छां.उ.8.7.1) इस प्रकार प्रजापतिविद्या में वही आत्मा के गुण कहे गये हैं। परमात्मा के ये धर्म सदा आविर्भूत रहते हैं किन्तु प्रकृतिसंसर्ग के कारण जीवात्मा के धर्म बद्धावस्था में तिरोहित हो जाते हैं। **परं ज्योतिरुपसपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते** (छां.उ.8.12.2) यह श्रुति मुक्तावस्था में आत्मा के स्वाभाविक अपहतपाप्मत्वादि गुणों के आविर्भाव को कहती है। अविद्या के पूर्णतः निवृत्त होने से मुक्तात्मा का धर्मभूत ज्ञान भी असंकुचित होता है। इस प्रकार मुक्तात्मा के स्वाभाविक अपहतपाप्मत्वादि ब्राह्म गुणों का आविर्भाव होने से तथा असंकुचित धर्मभूतज्ञान होने से उसकी परमात्मा से परम समता होती है। अपहतपाप्मत्वादि गुणों का आविर्भावरूप तथा असंकुचित धर्मभूतज्ञानवत्त्वरूप परम समता है। ज्ञानरूपत्वेन सभी जीवात्मा परमात्मा के समान हैं किन्तु आविर्भूत अपहतपाप्मत्वादि गुणवत्त्वेन तथा असंकुचित धर्मभूतज्ञानवत्त्वेन मुक्तात्मा परमात्मा के अत्यन्त समान है। इसलिए आविर्भूत ब्राह्म गुण (गुणाष्टक) वाले मुक्तात्मा के लिए **ब्रह्मैव भवति** यहाँ ब्रह्म शब्द का प्रयोग हुआ है अर्थात् आविर्भूत ब्राह्म गुणों वाला होने से मुक्त को ब्रह्म कहा जाता है, इस अभिप्राय से 'ब्रह्म को जाानने वाला ब्रह्म ही होता है'-**ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति** यह श्रुति प्रवृत्त होती है। ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाला मुक्तात्मा आविर्भूत अपहतपाप्मत्वादि ब्राह्म गुणों वाला होता है, स्वरूपतः और गुणतः निरतिशय बृहत्त्व ही ब्रह्मशब्द का प्रवृत्तिनिमित्त है, इसलिए स्वरूपतः तथा गुणतः निरतिशय बृहत परमात्मा को ब्रह्म कहा जाता है। प्रवृत्तिनिमित्त का एकदेश गुणतः बृहत्त्व प्रत्यगात्मा में है, अतः गुणतः निरतिशय बृहत् प्रत्यगात्मा भी है, इसलिए इसे भी ब्रह्म कहा जाता है। प्रत्यगात्मा गुणतः बृहत् होने पर भी उसमें जगत्कारणत्व के अनुकूल गुणतः बृहत्त्व नहीं है तथा स्वरूपतः बृहत्त्व नहीं है- **न हि मुक्तस्यापरिच्छिन्नज्ञानानन्दत्वेऽपि जगत्कारणत्वानुगुणबृहत्त्वं स्वरूपबृहत्त्वं चास्ति**(श्रु.प्र.1.1.1)। 'गङ्गायां घोषः' यहाँ गङ्गा पद के प्रवृत्तिनिमित्त का पूर्णतः त्याग होने से यह अत्यन्त अमुख्य प्रयोग है किन्तु 'ब्रह्मैव' यहाँ ब्रह्मपद के प्रवृत्तिनिमित्त का पूर्णतः त्याग न होनेसे

यह अत्यन्त अमुख्य प्रयोग नहीं है, मुख्यके समान है- **गङ्गायां घोषः इति गङ्गापदवत् कात्स्र्येन प्रवृत्तिनिमित्तप्रहाणाभावात् परमात्मनीव प्रवृत्तिनिमित्तपौष्कल्याभावाच्च प्रवृत्तिनिमित्तैकदेशान्वयिनि मुख्यात्मनि मुख्यकोटिरित्यभिप्रायेण मुख्य एवेत्युक्तम्, लाक्षणिकगङ्गापदवद् नान्यन्तामुख्य इत्यर्थः** (श्रु.प्र.1.1.1) **स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति** (मु.उ.3.2.9) यह प्रस्तुत श्रुति का आकार है। यहाँ पूर्वमें आये ब्रह्म पद का विशेषण 'परमम्' है। बाद में आया हुआ ब्रह्म पद विशेषणरहित है, इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मपद गुणतः बृहत् मुक्तात्माका बोधक है। ब्रह्मवेत्ता देहात्मभ्रम तथा स्वतन्त्रात्मभ्रम की सामग्री अविद्या से रहित होकर शुद्ध ब्रह्म(मुक्तात्मा) होता है, यह भी **ब्रह्मैव भवति** का अर्थ है। कहीं पर 'एव' शब्द साम्य अर्थका वाचक होता है- **साम्ये चैव क्वचिच्छब्दः**(नि.) यह निघण्टुवचन है। नानार्थवैजयन्तीके अव्ययपर्याय संग्रहाध्यायमें **साम्ये वद् वैवमेवेव** यह वचन है। इसका अर्थ है- वतिप्रत्यय, वा शब्द, एवं शब्द, एव शब्द और इव शब्द साम्य अर्थ के बोधक हैं, अतः 'ब्रह्मैव' यहाँ ब्रह्म शब्द को परमात्मा का बोधक होने पर भी सादृश्य अर्थ वाले एव शब्दका प्रयोग होने से 'ब्रह्मसदृश होता है' अथवा 'ब्रह्मसदृश नित्य प्रत्यक्षस्वरूप वाला होता है', यह श्रुतिका अर्थ निष्पन्न होता है। आत्मसाक्षात्कार के बाद परमात्मसाक्षात्क होता है, अतः परब्रह्म का साक्षात्कार करने वाली अपनी आत्मा के साथ परब्रह्म का भी साक्षात्कार करता है। ब्रह्मदर्शी के परमात्मपर्यन्त स्वरूप का आविर्भाव होता है। ब्रह्म को जानने वाला आविर्भूत परब्रह्मपर्यन्त स्वरूप वाला होता है अर्थात् वह परब्रह्मपर्यन्त साक्षात्कार करता है। **वैष्णवं वामनमालभेत्** इत्यादि वेदवाक्य एव शब्दका साम्य अर्थ होने में प्रमाण हैं। दूसरों से स्पर्धा करनेवाला पुरुष विष्णुदेवता वाले वामनपुरुष से याग करे, स्पर्धा करनेवाला वह पुरुष विष्णु ही बनकर इन लोकोंको जीतता है- **वैष्णवं वामनमालभेत स्पर्धमानो विष्णुरेव भूत्वेमान् लोकानभिजयति।** विष्णुः एव यहाँ एव शब्द का साम्य अर्थ है, इससे यह अर्थ फलित होता है कि उस याग को करने के बाद स्पर्धा करने वाला वह पुरुष विष्णु के समान बनकर इन लोकों को जीतता है। यहाँ 'विष्णुः एव' का अर्थ विष्णु ही होना संभव

नहीं क्योंकि याग आदि किसी भी प्रकारसे विष्णुरूप को प्राप्त करना संभव ही नहीं। उद्धृत वाक्यमें **इमान् लोकान् अभिजयति** इस प्रकार शत्रुजयरूप ऐहिकफलका वर्णन है, वह यागसे प्राप्त हो सकता है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ 'एव' शब्द साम्य अर्थ में प्रयुक्त है, वैसे ही प्रस्तुत मुण्डकश्रुति में 'एव' शब्द साम्य अर्थ में है, इस श्रुतिका अर्थ है कि जो ब्रह्म को प्रत्यक्ष जानता है, वह ब्रह्म के समान हो जाता है। ऐसा होने पर **एवे चानियोगे** इस वार्तिक से यहाँ पररूप एकादेश होनेकी शंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि अनवक्लृप्ति (अनवधारण) अर्थ में ही पररूप का विधान है। यहाँ सादृश्य अर्थ का बोधक 'एव' पद होने के कारण उसका अनवधारण अर्थ नहीं है अतः जीव और ब्रह्म के श्रुतिसिद्ध भेद का निषेध नहीं हो सकता।

**मुक्त की प्रशंसा**

ऊपर ब्रह्मसाक्षात्कार का मुख्य फल कहकर अब गौण फल कहा जाता है- ब्रह्मवेत्ता के वंश में कोई अब्रह्मवेत्ता नहीं होता। जैसे राजा जनक के कुल में अनेकों पीढ़ियाँ ब्रह्मविद् हुई थीं। ब्रह्मवेत्ता के पुत्र, पौत्रादि और शिष्य-प्रशिष्य आदि ब्रह्मविद् ही होते हैं, यह आनुषंगिक फल हो सकता है और नहीं भी हो सकता। फलकथन तो ब्रह्मदर्शी की स्तुति के लिए है, ऐसा जानना चाहिए। ब्रह्मदर्शी शोक का अतिक्रमण करता है और उसके हेतु पाप का अतिक्रमण करता है। वह ग्रन्थि के समान छोड़ने में कठिन रागादि से मुक्त होकर ब्राह्म गुणों से युक्त होता है। आविर्भूत गुण वाले मुक्तात्मस्वरूप में आदर होने के कारण श्रुति उसका पूर्व में ब्रह्मैव से कथन करके पुनः अमृत पद से कथन करती है।

**तदेतदृचाभ्युक्तम्[1]।**

**क्रियावन्तः श्रोत्रिया: ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः।**
**तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम्॥10॥**

---

**टिप्पणी**- 1. अत्र 'तदेष श्लोकः' इति मध्वभाष्यसम्मतपाठः।

**अन्वय**

तद् अभि एतत् ऋचा उक्तम्। क्रियावन्तः श्रोत्रियाः ब्रह्मनिष्ठाः श्रद्धयन्तः स्वयम् एकर्षि जुह्वते, तु यैः विधिवत् शिरोव्रतं चीर्णम्। तेषाम् एव एतां ब्रह्मविद्यां वदेत्।

**अर्थ**

**तद्**- ज्ञान(विद्या) को **अभि**- लक्ष्य करके **एतत्**- यह साधन **ऋचा**- ऋक् मन्त्र के द्वारा **उक्तम्**- कहा जाता है। (जो) **क्रियावन्तः**- नित्य, नैमित्तिक कर्मों को करने वाले, **श्रोत्रियाः**- वेदाध्ययन करने वाले, **ब्रह्मनिष्ठाः**- ब्रह्म को जानने की इच्छा करने वाले **श्रद्धयन्तः**- श्रद्धालु होकर **स्वयम्**- स्वयं **एकर्षिम्**[1]- अग्निहोत्र **जुह्वते**- होम को करते हैं। **तु**- और **यैः**- जिन्होंने **विधिवत्**- शास्त्रीय विधि के अनुसार **शिरोव्रतम्**[2]- शिरोव्रत का **चीर्णम्**- अनुष्ठान किया हो, **तेषाम्**- उन्हें **एव**- ही **एताम्**- इस **ब्रह्मविद्याम्**- ब्रह्मविद्या का **वदेत्**- उपदेश करना चाहिए।

**व्याख्या**

**अध्यापन का नियम**

जो वेदाध्ययन करने वाले, विहित नित्य, नैमित्तिक कर्म करने वाले, ब्रह्म की जिज्ञासा करने वाले श्रद्धायुक्त होकर अग्निहोत्र होम करने वाले तथा विधि के अनुसार शिरोव्रत का अनुष्ठान करने वाले हैं, उन्हें ही इस मुण्डकोपनिषद्रूप विद्या का उपदेश करना चाहिए।

**स्वाध्यायोऽध्येतव्यः** (तै.आ. 2.15.5, श.ब्रा.1.5.7) इस प्रकार वेदाध्ययन का विधान किया जाता है। गुरुमुखोच्चारणपूर्वकोच्चारण वेदाध्ययन कहलाता है। वेद के अन्तर्गत ही उपनिषत् हैं अतः वेदाध्ययन करने वाले छात्र गुरुमुख से उपनिषत् का भी उच्चारण करते हैं। इस

---

**टिप्पणी**- 1. एकर्षिशब्दितमग्निहोत्रं स्वयमेव जुह्वतीत्यर्थः। एकर्त्विङ्मात्रसाध्यत्वाद् अग्निहोत्रस्य एकर्षित्वमित्यर्थः(प्रका.)।

2. शिरसि अङ्गारपात्रधारणलक्षणम् आथर्वणिकानां वेदव्रतत्वेन प्रसिद्धम् (प्रका.)।

मुण्डकोपनिषद्रूप वेद का अध्ययन शिरोव्रत का आचरण करने वालों को कराएं। यह शिरोव्रत विद्या के प्रतिपादक उपनिषद्रूप वेद के अध्ययन का अङ्ग सिद्ध होता है, यह उपनिषत् के अर्थज्ञान का अङ्ग नहीं है और उपासनात्मिका विद्या का भी अङ्ग नहीं है।

*ऊपर अध्यापन का नियम कहकर अब अध्ययन का नियम कहा जाता है-*

**तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः प्रोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते।**
**नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः॥11॥**

**॥ इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥**

**॥ मुण्डकोपनिषत् समाप्ता ॥**

### अन्वय

ऋषिः अङ्गिराः तत् एतत् सत्यम् प्रोवाच। अचीर्णव्रतः एतत् न अधीते। परमऋषिभ्यः नमः, परमऋषिभ्यः नमः।

### अर्थ

**ऋषिः**- ऋषि **अङ्गिराः**- अङ्गिरा ने **तत्**- पूर्वोक्त **एतत्**- इस **सत्यम्**- सत्य अक्षर ब्रह्म का (शौनक को) **प्रोवाच**- उपदेश किया। **अचीर्णव्रतः**- शिरोव्रत न करने वाला **एतत्**- मुण्डकोपनिषद्रूप वेद का **न अधीते**- अध्ययन न करे। **परमऋषिभ्यः**- ब्रह्मविद्यासम्प्रदाय के प्रवर्तक ऋषियों को **नमः**- नमस्कार है। **परमऋषिभ्यः**- ब्रह्मविद्यासम्प्रदाय के प्रवर्तक ऋषियों को **नमः**- नमस्कार है।

### व्याख्या

### सम्प्रदाय और अध्ययन का नियम

महर्षि अङ्गिरा ने समित्पाणि होकर उपसन्न हुए जिज्ञासु शौनक को

3.2.11

इस ग्रन्थ में प्रतिपादित सत्य, अक्षर ब्रह्म का उपदेश किया। शिरोव्रत का अनुष्ठान न करने वाला इस उपनिषदात्मक वेद का अध्ययन न करे। इस उपनिषत् के आरम्भ में आचार्य ब्रह्मा से लेकर शौनक तक परम्परा वर्णित है। आगे उसी परम्परा से हम सभी को विद्या प्राप्त हुई। ब्रह्मविद्यासम्प्रदाय के प्रवर्तक उन सभी ऋषियों को नमस्कार है। **नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः** इस प्रकार दो बार कथन ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा आचार्यों में आदर को और विद्या की समाप्ति को सूचित करने के लिए है।

।। मुण्डकोपनिषत् की व्याख्या समाप्त ।।

**ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।**
**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।**
**स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।**
**ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।**

अनुग्रहेण सीतायाः रामस्य च मया कृता।
श्रीत्रिभुवनदासेन व्याख्या तत्त्वविवेचनी।।1।।
कनकभवनाधीशः सीतया सह राजते।
समर्प्यते कृती रम्या तयोः पादारविन्दयोः।।2।।

# परिशिष्ट

# परिशिष्ट- 1
# संकेताक्षरानुक्रमणिका

| | |
|---|---|
| अ.को. | अमरकोशः |
| अ.पु. | अग्निपुराणम् |
| अ.सू. | अष्टाध्यायीसूत्रम् |
| आ.भा. | आनन्दभाष्यम् |
| उ.ख. | उपनिषत्खण्डार्थव्याख्या |
| क.उ. | कठोपनिषत् |
| गी. | गीता (श्रीमद्भगवद्गीता) |
| गी.रा.भा. | गीतारामानुजभाष्यम् |
| छां.उ. | छान्दोग्योपनिषत् |
| त.टी. | तत्त्वटीका (ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्यस्य व्याख्या) |
| तै.आ. | तैत्तिरीय-आरण्यकम् |
| तै.उ. | तैत्तिरीयोपनिषत् |
| तै.ना.उ. | तैत्तिरीयनारायणोपनिषत् |
| नि. | निरुक्तम् |
| पां.सं. | पाञ्चरात्रसंहिता |
| पै.ब्रा. | पैङ्गिरहस्यब्राह्मणम् |
| प्रका. | प्रकाशिका (रङ्गरामानुजभाष्यम्) |
| प्रदी. | प्रतिपदार्थदीपिका |
| ब्र.वै.पु. | ब्रह्मवैवर्तपुराणम् |
| ब्र.सू. | ब्रह्मसूत्रम् |
| ब्र.सू.भा. | ब्रह्मसूत्रभाष्यम् |
| म.भा.व. | महाभारतवनपर्व |
| म.भा.शां. | महाभारतशान्तिपर्व |
| म.स्मृ. | मनुस्मृतिः |
| रघु.म. | रघुवंशमहाकाव्यम् |

| | |
|---|---|
| वा. | वार्त्तिकम् (अष्टाध्यायीसूत्रस्य) |
| वि.चि. | विष्णुचित्तीयव्याख्या (विष्णुपुराणस्य) |
| वि.पु. | विष्णुपुराणम् |
| वि.स.ना. | विष्णुसहस्रनाम |
| श.ब्रा. | शतपथब्राह्मणम् |
| शां.उ. | शाट्टायनीयोपनिषत् |
| शां.भा. | शांकरभाष्यम् |
| श्रु.प्र. | श्रुतप्रकाशिका (ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्यस्य व्याख्या) |
| श्वे.उ. | श्वेताश्वतरोपनिषत् |

# परिशिष्ट- 2
# मन्त्रानुक्रमणिका

# परिशिष्ट- 3
# प्रमाणानुक्रमणिका

# परिशिष्ट- 4
## ग्रन्थानुक्रमणिका


1. **अग्निमहापुराणम्**

   नाग पब्लिशर्स दिल्ली सन 1985

2. **अमरकोशः**

   सुधाख्यया रामाश्रमीत्यपरनामधेयया व्याख्यया सहितः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, सन 1985

3. **अमरकोशः**

   संक्षिप्तमाहेश्वर्या टीकया समेतः निर्णयसागर मुद्रणयन्त्रालय, सन् 1940

4. **ईशादिपञ्चोपनिषद्**

   गूढार्थदीपिका व्याख्यासहित, व्याख्याकार श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य श्रीत्रिदण्डी स्वामीजी श्रीमहालक्ष्मीनारायण यज्ञ समिति ओझा पट्टी सेमरिया, जिला-भोजपुर वि.सं.2049

5. **ईशावास्योपनिषत्**

   तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या सहित, व्याख्याकार स्वामी त्रिभुवनदास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू.ए, जवाहरनगर बंगलो रोड दिल्ली सन 2014

6. **ईशावास्योपनिषत्**

   (प्रतिपदार्थदीपिका-वेदान्ताचार्यभाष्य-प्रकाशिका-रङ्गाचार्यभाष्य-आनन्दभाष्य-सुबोधिन्याख्य )व्याख्याषट्कोपेता, संस्कृत संशोधन संसत् मेलुकोटे सन 1991

7. **उपनिषद्भाष्यम्**

   श्रीवादिराजतीर्थविरचितप्रकाशिकासंवलितया श्रीजयतीर्थविरचितया टीकया, श्रीराघवेन्द्रतीर्थविरचितेन उपनिषत्खण्डार्थेन च विभूषितम्, पूर्णप्रज्ञसंशोधनमन्दिरम्, पूर्णप्रज्ञविद्यापीठम्, बेंगलूर-28 सन 1997

8. **उपनिषद्भाष्यम्( तैत्तिरीय-ऐतरेय-छान्दोग्योपनिषद्भाष्यम् )**

   श्रीरङ्ग- रामानुजमुनिविरचितम्, उत्तमूरवीरराघवाचार्यप्रणीतपरिष्कार-सहितम्, उत्तमूरवीरराघवार्चसेन्टिनेरी ट्रस्ट चेन्नै, सन 2004

**9. उपासनादर्पण**

सम्पादक स्वामी त्रिभुवनदास, मलूकपीठ वृन्दावन सन् 2010

**10. एकादशोपनिषदः**

उपनिषन्मणिप्रभया मिताक्षरया दीपिकया च समलङ्कृताः, सुन्दरलाल जैन पंजाब संस्कृतपुस्तकालय सैठमिट्ठा बाजार लाहौर, वि.सं. 1937

**12. कठोपनिषत्**

तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या सहित, व्याख्याकार स्वामी त्रिभुवनदास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू,ए, जवाहरनगर बंगलो रोड दिल्ली, सन 2015

**13. काशिका ( पञ्चमो भागः )**

वामनजयादित्यविरचिता, न्यास-पदमञ्जरी-भावबोधिनीसहिता, सम्पादकौ डा. जयशंकरलाल त्रिपाठी डा.सुधाकर मालवीयः, तारा बुक एजेन्सी वाराणसी, वि.सं. 2045

**14. केनोपनिषत्**

तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या सहित, व्याख्याकार स्वामी त्रिभुवनदास चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान जवाहर नगर, बंगलो रोड दिल्ली, सन 2015

**15. केनाद्युपनिषद्भाष्यम्**

श्रीरङ्गरामानुजमुनिविरचितं भाष्यपरिष्कारसहितम्, श्रीउत्तमूरवीरराघ-वाचार्य, 25 नाथमुनि वीथी, ति. नगर मद्रास, सन् 2003

**16. दशोपनिषदः**

स्वामिभगवदाचार्यप्रणीतेन सामसंस्कारभाष्येण सहिता प्रकाशिका श्रीचन्दनबहिन काश्मीरसोसाइटी अहमदाबाद-7, सन् 1975

**17. न्यायसिद्धाञ्जनम्**

हिन्दीव्याख्याकार पं श्रीनीलमेघाचार्य सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, सन वि.सं. 2053

**18. प्रश्नोपनिषत्**

तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या सहित, व्याख्याकार स्वामी त्रिभुवनदास चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू,ए, जवाहरनगर बंगलो रोड

दिल्ली सन 2016

19. **ब्रह्मवैवर्तपुराणम् द्वितीयो भागः**
    राष्टियसंस्कृतसंस्थानम् नई दिल्ली सन 2004

20. **ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्**
    व्याख्याकार स्वामी हनुमान दास जी षट्शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन 1993

21. **ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्**
    श्रीशंकराचार्य प्रणीतम्, श्रीसत्यानन्दसरस्वतीविरचितेन भाषानुवादेन सत्यानन्दीदीपिकया च समलंकृतम्, गोविन्दमठ टेढ़ीनीम वाराणसी, वि.सं. 2058

22. **ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्यम्**
    श्रुतप्रकाशिकासहितम् (भाग-1) विशिष्टाद्वैत प्रचारिणी सभा 27 वेंकटेश अग्रहारम मैलापोर मद्रास, सन 1989

23. **ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्यम्**
    श्रुतप्रकाशिकासहितम् (भाग-2) विशिष्टाद्वैतप्रचारिणी सभा, 27 वेंकटेश अग्रहारम मैलापोर मद्रास, 1989

24. **मनुस्मृतिः**
    (मन्वर्थमुक्तावल्या सहिता)मणिलाल इच्छाराम देसाई गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बई, सन 1969

25. **महाभारत (द्वितीयखण्ड वनपर्व और विराटपर्व)**
    श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत् हिन्दी अनुवाद सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, वि.सं.2053

26. **महाभारत (पञ्चमखण्ड शान्तिपर्व)**
    श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत् हिन्दी अनुवाद सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, वि.सं.2053

27. **मुण्डकोपनिषत्**
    भाष्यचतुष्टयोपेता (प्रतिपदार्थदीपिका-प्रकाशिका-आनन्दभाष्यम्-सुबोधिनी) संस्कृत संशोधन संसत् मेलुकोटे, सन 2005

28. **मुण्डकोपनिषत्**
    सटिप्पणटीकाद्वयसमलङ्कृतशांकरभाष्ययुता, कैलास आश्रम

ऋषीकेश, उत्तराखण्ड सन 1978

29. **मुण्डकोपनिषत्**
आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशांकरभाष्यसमेता, आनन्द आश्रम मुद्रणालय पुणे सन 1925

30. **मुण्डक-प्रश्न-उपनिषद्**
आनन्दगिरिटीकाघटित- शांकरभाष्यानुवाद श्रीदक्षिणामूर्ति मठ डी. 49/9 मिश्रपोखरा, वाराणसी, वि.सं.2048

31. **रघुवंशमहाकाव्यम्**
सञ्जीवनीसुधासंस्कृतहिन्दीटीकासहितम्. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी

32. **विशिष्टाद्वैतकोशः (प्रथमसम्पुटः)**
संस्कृत संशोधन संसत् मेलुकोटे सन 1983

33. **विशिष्टाद्वैतकोशः (द्वितीयसम्पुटः)**
संस्कृत संशोधन संसत् मेलुकोटे सन 1987

34. **विशिष्टाद्वैतकोशः (पञ्चमसम्पुटः)**
संस्कृत संशोधन संसत् मेलुकोटे सन1996

35. **विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन**
स्वामी त्रिभुवनदास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू.ए, जवाहर नगर बंगलो रोड. दिल्ली, सन 2013

36. **वेदान्तपरिभाषा**
श्रीधर्मराजाध्वरीन्द्रविरचिता, सविवरण प्रकाशहिन्दी व्याख्योपेता, व्याख्याकार डा. श्रीगजाननशास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी सन 1983

37. **वेदान्तसारः**
सदानन्दप्रणीतः, हिन्दीव्याख्यासहितः, व्याख्याकार आचार्य बदरीनाथशुक्ल मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, सन 1993

38. **वैदिक साहित्य का इतिहास (तृतीय संस्करण)**
डा. सुरेन्द्रदेव शास्त्री, साहित्य भण्डार मेरठ

39. **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (प्रथमो भागः)**
श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचिता, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, सन् 2004

40. **व्याकरणमहाभाष्य ( प्रथम आह्निकत्रय )**

भगवत्पतञ्जलिविरचित, हिन्दी अनुवाद तथा विवरण सहित, अनुवादक व विवरणकार पं.चारुदेवशास्त्री मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, सन् 1984

41. **श्रीपञ्चरत्नगीता**

गीताप्रेस गोरखपुर, वि.सं.2067

42. **श्रीभाष्यम् द्वितीयं सम्पुटम्**

(विमर्शात्मकं सम्पादनम्) भगवद्रामानुजविरचितम, संस्कृत संशोधन संसत् मेलुकोटे सन 1987

43. **श्रीभाष्यम् ( भाग-1 )**

श्रीभगवद्रामानुजविरचितम् उत्तमूरवीरराघवाचार्यविरचितभाष्यार्थ-दर्पणसमेतम्, श्रीरंगम श्रीमद् आण्डवन आश्रमम्, 21 सर देशिक रोड मैलापोर चेन्नई-4, सन 1997

44. **श्रीमन्महाभारतम् ( अष्टमो भागः )**

चतुर्धरवंशावतंस श्री नीलकण्ठविरचित भारतभावदीपाख्यटीकया समेतम्, नाग प्रकाशक दिल्ली सत्र 1992

45. **श्रीविष्णुमहापुराणम्**

विष्णुचित्त्यात्मप्रकाशाख्यश्रीधरीयव्याख्याद्वयोपेतम्, नाग प्रकाशन दिल्ली, सन 1985

46. **श्रीविष्णुमहापुराणम्**

हिन्दी अनुवादसहित, गीताप्रेस गोरखपुर, वि.सं. 2050

47. **सिद्धान्तकौमुदी**

तत्त्वबोधिनीटीकासहिता खेमराज-श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय मुम्बई, वि.सं. 2031
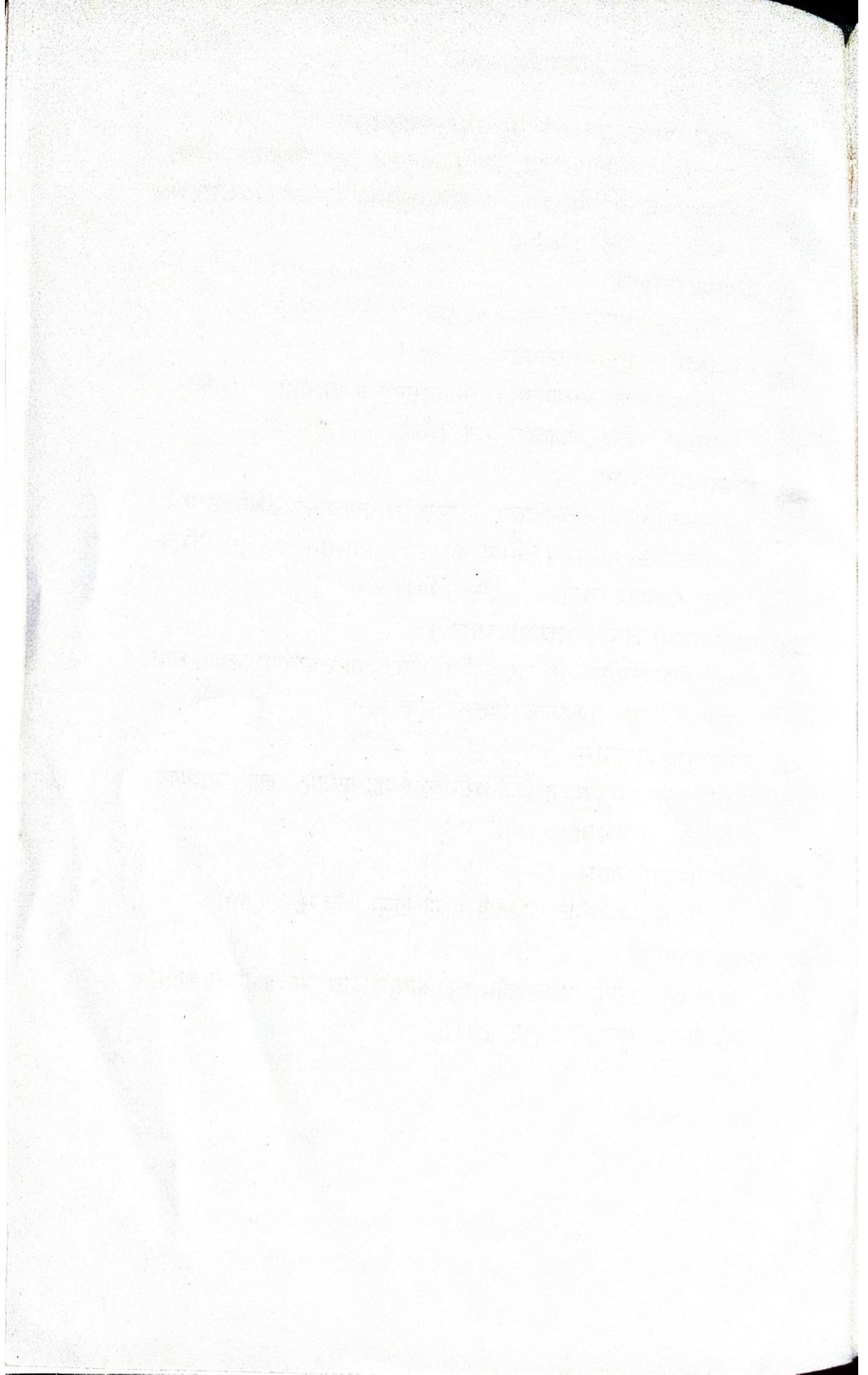
प्रस्तुत मुण्डकोपनिषत् ग्रन्थ में मन्त्र के पश्चात् अन्वय और मन्त्र के पदों का अर्थ प्रस्तुत है, जिससे सामान्य पाठकों को भी मन्त्रार्थ सरलता से हृदयंगम हो सके। अर्थ के बाद गम्भीर, विस्तृत और मर्मस्पर्शी व्याख्या सन्निविष्ट है। विषयवस्तु को अवगत कराने के लिए इसे यथोचित शीर्षकों से सुसज्जित किया गया है। इसके अध्ययन से विषय अनायास ही हृदयपटलपर अंकित होता चला जाता है, पाठकगण इसका स्वयं अनुभव करेंगे। मन्त्र के यथाश्रुत अर्थ का बोध कराना ही हमारे व्याख्याकार आचार्य स्वामीजी को अभीष्ट है, फिर भी कुछ स्थलों में अन्य मतों की समालोचना हुई है, जो कि प्रासङ्गिक है। ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट भी दिये गये हैं, जिससे यह ग्रन्थ शोधकर्ताओं के लिए भी संग्राह्य है।

## व्याख्याकार की प्रकाशित कृतियाँ

1. विशिष्टाद्वैत वेदान्त का विस्तृत विवेचन
2. तत्त्वत्रयम्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
3. ईशावास्योपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
4. केनोपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
5. कठोपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
6. प्रश्नोपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
7. मुण्डकोपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
8. माण्डूक्योपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
9. केन-माण्डूक्य-उपनिषत्-रङ्गरामानुजभाष्य-हिन्दीव्याख्या

## प्रकाशनाधीन

10. तैत्तिरीयोपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
11. ऐतरेयोपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
12. ऐतरेयोपनिषत्-रङ्गरामानुजभाष्य- हिन्दीव्याख्या
13. श्रीमद्भगवद्गीता- हिन्दीव्याख्या
14. अर्थपञ्चक- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
15. ब्रह्मसूत्र- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
16. छान्दोग्योपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
17. सांख्यकारिकागौडपादभाष्य- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
18. श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
19. बृहदारण्यकोपनिषत्- तत्त्वविवेचनी हिन्दीव्याख्या
20. तर्कसंग्रह-पदकृत्य-हिन्दीव्याख्या

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान - दिल्ली